प्रकाशक

पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय (बिहार-प्रान्त)

卐

नवयुवक-हृदय-हार

१ प्रेम
२ विपंची
३ जयमाल
४ तीर्थरेणु
५ मधुसंचय
६ अन्तर्जगत्
७ मैत्रीधर्म
८ यूथिका
९ अशान्त
१० मकरन्दबिन्दु
११ कंगाल की बेटी
१२ मोती के दाने
१३ झलक
१४ गुनगुन
१५ रमणी-निर्माण
१६ सोने की गाड़ी
१७ लेखमणिमाला

卐

मुद्रक

हनुमानप्रसाद, विद्यापतिप्रेस, लहेरियासराय

विक्रमसंवत् १९९६ ❀ सन् १९३९ ई०

अर्चनीय

अग्रज !

सुगृहीतनामधेय

रामकृष्ण (रामकिशुन) !

आप सच्चे किसान थे। कृषि की पवित्रतम वेदी पर आपने अन्य कृषकों के कष्टों को दूर करते हुए अपने जीवन का बलिदान कर दिया। जिन आततायियों ने आपके हृदय की स्वच्छता से लाभ उठाकर विश्वासघात से आपके प्राणों का अपहरण किया है, उन्हें विश्व में शांति कहाँ ! मानव-शरीर-सदन में विश्वात्मा की जगमगाती ज्योति को पाखंड-पवन के सहारे तिरोहित करना जघन्य पाप है।

शुद्ध, बुद्ध, नित्य, मुक्त, सत्-चित्-आनन्द-रूप पिता आपकी अमर आत्मा को शांति प्रदान करे।

यह नाटक आप ही की स्मृति को हरित करने के उद्देश्य से लिखा गया है।

आपका स्नेहमय हृदय

विपन्न अनुज रामदीन का यह

उपहार स्वीकृत करे

वक्तव्य

संसार के प्रायः सभी कार्यों की निष्पत्ति में कारण की प्रबलता देख पड़ती है। इस पुस्तक का प्रणयन भी इसी व्यापक नियम का अनुसरण करता है।

स्कूल तथा कालेज में हिन्दी-नाटक समय-समय पर खेले जाते हैं। उनमें अधिकांश ऐसे होते हैं जिनमें प्रेम की संयोग-वियोग-अवस्थाओं का भद्दा चित्रण रहता है। कहीं-कहीं प्रेम-वर्णन अश्लीलता की पराकाष्ठा पर पहुँचा रहता है। कोमलमति, अप्रौढवयस्क तथा अपरिपक्वबुद्धि विद्यार्थियों के हृदय पर ऐसे नाटकों का अभिनय अपना अमिट और अनिष्टकर प्रभाव रख छोड़ता है। पुनः हिन्दी में ऐसे नाटकों की संख्या प्राय अति अल्प है जिनमें ग्रामीणों के हर्ष-शोक, उत्थान-पतन, प्रेम-घृणा, शौर्य-कातरता, संगठन और सहयोग की जीती-जागती तस्वीर खींची गई हो।

भारत का अधिकांश जन-समुदाय गाँवों में रहता है। वर्त्तमान काल का प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति अपनी-अपनी चेष्टाओं का केन्द्र, कृत्रिम जीवन से ग्रस्त नगर से सुदूर, ग्राम के टूटे-फूटे प्राकृत झोपड़ों में रहनेवाली मूक जनता के मध्य, स्थिर कर रहा है। भारत की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था 'कांग्रेस' के सूत्रधार आज अत्यधिक गाँवों के संगठन और सुधार में संलग्न देख पड़ते हैं। भारत के बड़े लाट (लिनलिथगो) साहब भी ग्रामोद्धार में ही विशेष दिलचस्पी रखते हैं। हिन्दुस्तान का वास्तविक दर्शन ग्राम ही में होता है। एवं साहित्य का विद्यार्थी यदि ग्राम में अनुरक्ति प्रकट करे तो विस्मय की बात ही क्या ?

आधुनिक युग विज्ञान और कारखाने का है। इस युग के साहित्य में समाज, नीति, विज्ञान और दर्शन के तत्वों का सन्निवेश आवश्यक समझा जाता है। सांप्रतिक साहित्य में उपर्युक्त विषयों के सरल या गूढ़ तत्वों का पुट न दिया जाय, तो उसका समादर सभ्य और शिष्ट जन-समुदाय में संभव नहीं।

मैंने युग की आवश्यकताओं की अनुभूति कर अपने नाटक का प्रतिपाद्य विषय 'ग्राम' चुना है। देहाती जीवन के अन्तर्द्वन्द्व या परस्पर-विरोधी भावों, सिद्धान्तों या पक्षों के प्रतिपादन में यथासाध्य प्रयत्न किया है। कहाँ तक ग्रामीण जीवन की अवस्थाओं के अंकन में सफलप्रयत्न हुआ हूँ, इसका निर्णय निरपेक्ष और निष्णात समालोचकों के हाथों में छोड़ना उचित समझता हूँ।

मैंने इस पुस्तक को नाटक में परिगणित किया है। नाटकीय छः तत्वों—कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, शैली, देशकाल तथा उद्देश्य—की संश्लिष्ट योजना नहीं तो असंश्लिष्ट योजना करनी ही पड़ी है। किसी कला के उद्देश्य का निर्धारण करना तो अति कठिन है। लक्ष्य के निर्णय में मानव-विचार में एकता नहीं देख पड़ती। नाटकीय रचना तथा अभिनय कला है। इसका लक्ष्य किसीकी दृष्टि में 'जनता का मनोविनोद करना' है, तो किसी दूसरे की दृष्टि में 'राष्ट्र या समाज की दशा को समुन्नत करना' है। कितने तो जीवन की प्रत्यक्ष व्याख्या करना ही नाटक का लक्ष्य समझते हैं। नैतिक उन्नति तथा सामाजिक कल्याण भी नाटककार अपने ध्यान में रख रूपक की रचना करता है। इसमें स्वाभाविकता को प्रमुख स्थान प्रदान किया जाता है। तत्कालीन समाज की चित्तवृत्ति और प्रगति पर पर्याप्त प्रकाश डालने का प्रयत्न होता है।

नाटक-प्रणयन के सिद्धान्तों का कहाँ तक परिपालन मुझसे हो सका है, मैं स्वयं प्रकट करने में असमर्थ हूँ। कोई भी कला का प्रेमी पीटी हुई लकीर पर चलने में अभिरुचि और आह्लाद की अनुभूति नहीं कर सकता। फिर भी विकट विवेक की कसौटी पर कला को कसनेवाले समालोचकों की स्मृति दिल को दहला देती है और चित्त में भय का संचार कर देती है। इच्छा होती है कि पुस्तक की पांडुलिपि हाथ में लिये विध्वंसकारी काल के गह्वर में छिपा रहूँ। पर यहाँ भी विवशता है।

मै स्वतः संस्कृतगर्भित हिन्दी का पक्षपाती हूँ; किन्तु अभिनय की सुगमता को ध्यान में रख पुस्तक की भाषा को सरल और सरस बनाने का प्रयत्न किया है। शब्दशक्ति, शब्द-चयन, शैली, वाक्यों की लाक्षणिकता तथा प्रभावोत्पादिकता के सम्बन्ध में जो सम्मतियाँ समीक्षक प्रकट करेंगे, उन्हें मानना और उनके अनुकूल दूसरे संस्करण में संशोधन करना मेरा कर्त्तव्य होगा।

मा हिन्दी के विस्तृत और अक्षय्य भांडार में यदि मेरी पुस्तक निम्न स्थान भी प्राप्त कर सकी, तो मै अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

जी० बी० बी० कालेज
मुजफ्फरपुर
२२-४-२६

रामदीन पांडेय

भूमिका

यह ग्रामोद्धार का युग है अथवा योजना का युग है !

बड़े लम्बे-चौड़े आयोजन से आजकल योजनाएँ बनती हैं ; पर कार्य-रूप में परिणत होते-होते बरसों लग जाते हैं। बड़ी-बड़ी सभाओं के प्रस्तावों की तरह बड़ी-बड़ी योजनाएँ भी बहुत दिनों तक कागजों की तह में दबी पड़ी रहती हैं। अर्थाभाव की कठिनाई तो रहती है ; पर योजना की पूर्त्ति में जितने व्यय का अनुमान किया जाता है—योजना के निर्माण में ही उतना व्यय हो चुकता है !

किन्तु इस नाटक का एक प्रधान पात्र 'वीरेन्द्र' अपने त्याग के बल से वह काम कर दिखाता है जो बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनानेवाले अपनी लाखों की पूँजी के बल पर भी नहीं कर पाते। फिर वीरेन्द्र की सहायिका 'जोत्स्ना' एक साकार योजना-सी रंगमंच पर अवतीर्ण हुई है, जिसकी तपस्या 'वीरेन्द्र' की साधना के साथ मिलकर—'प्रभा' की सेवावृत्ति को अपनाती हुई—त्रिवेणी बन गई है। जो पाठक इस त्रिवेणी-संगम को हृदयङ्गम करेंगे वे ही इस नाटक के लक्ष्य तक पहुँच सकेंगे।

आजकल हमारे देश के गाँवों की जो वास्तविक दशा है, उसका सच्चा चित्र 'इकबाल' और 'भैरव' के चरित्र में प्रत्यक्ष देख पड़ता है। साथ ही, यह भी स्पष्ट देख पड़ता है कि उस दशा का सुधार कोई बड़ी-से-बड़ी योजना भी नहीं कर सकती। यदि कर सकती है तो किसी त्यागी युवक की लगन-भरी साधना ही, जिसमें किसी सदाचारिणी मातृमूर्त्ति का मणि-काञ्चन-संयोग भी हो।

हमारे गाँवों की आन्तरिक स्थिति झलकानेवाले नाटक हिन्दी में अनामिका को सार्थक करते हैं। बड़े सन्तोष की बात है कि विद्वान् लेखक ने आधुनिक युग की एक ज्वलन्त समस्या का ऐसा समीचीन समाधान किया है कि इस नाटक की उद्देश्य-वाणी मे युगधर्म की पुकार शंखध्वनि-सी सुन पड़ती है।

'मृत्युञ्जय' और 'रजनी' के चरित्र-चित्रण-द्वारा अनुभवी लेखक ने ठीक ही प्रमाणित किया है कि गाँवों का घोर पतन हो जाने पर भी आज वहाँ आदर्श पुरुषों और साध्वी नारियों का सर्वथा अभाव नहीं है; किन्तु वहाँ वे निर्जन के सुरभित सुमन की तरह 'अरसिकेषु कवित्व-निवेदनम्' कर रहे हैं!

'दारोगा' के चरित्र में जो स्वाभाविकता है, वही 'इकबाल' के चरित्र में भी झलक रही है। इन दोनों के पश्चात्ताप ने इस नाटक के उपदेशात्मक कलेवर का कायाकल्प कर दिया है। इसका प्रभाव मानव-हृदय पर वज्र की टाँकी से अंकित हो रहेगा।

'डाक्टर' का कर्त्तव्य-पालन और 'भैरव' का आत्म-समर्पण भी कुछ ऐसे प्रभावशाली प्रसंग हैं जो सहृदय दर्शकों की कोमल अनुभूति का विद्युद्वेग से स्पर्श किये बिना न रहेंगे।

इस प्रकार यह नाटक सामयिकता के सागर में क्रान्ति की एक ऐसी तरंग उठाने में समर्थ हुआ है जो हमारे ग्रामोद्धार-विषयक नैराश्य-पोत को जल-समाधि देने में अमोघशक्ति सिद्ध होगी।

विश्वास है कि इस ग्रामोत्थान के युग में यह अभिनय-सुलभ नाटक हिन्दी-रंगमंच को अवश्य आकृष्ट करेगा।

अक्षय तृतीया
सं० १९९६

शिवपूजनसहाय

पात्र

वीरेन्द्र—एक ग्राम-सुधार प्रेमी शिक्षित युवक

इक़बाल—एक निरंकुश और दबंग ज़मीन्दार

भैरव—इकबाल का आश्रित एक मूर्ख और बलवान किसान

नरपति—वीरेन्द्र का वृद्ध और धर्मभीरु पिता

मृत्युञ्जय—एक परिष्कृत विचार का दृढसंकल्प ग्रामीण

शम्भुगिरि—इकबाल का ससुर

मँगरा—वीरेन्द्र का नौकर

चौकीदार, चपरासी, दारोगा, डाक्टर, मजिस्ट्रेट, पुलिस-सुपरिंटेंडेंट, कोर्ट-इन्स्पेक्टर, वकील, जेलर, भंगी, संन्यासी, पादरी, रतना इत्यादि

पात्री

ज्योत्स्ना—मृत्युंजय की सेवापरायणा शिक्षिता कन्या

रजनी—इक़बाल की साध्वी पत्नी

प्रभा—भैरव की भोलीभाली गृहिणी

सागरिका—रतना की माता

ज्योत्स्ना

श्रीगणेशाय नमः

पहला अंक

पहला दृश्य

[देहाती खलिहान में गेहूँ, मटर, जौ आदि कुछ दँवे हुए और अधिकतर बोझे के रूप में]

वीरेन्द्र—मैं इस गाँव के आदमियों के मारे तंग आ गया। ये दिन-दहाड़े खेत चरा देते हैं। तीन बरसों से इस गाँव में चार आने हिस्से की जमींदारी चौदह हजार में खरीदकर खेती कर रहा हूँ। पर पचास मन भी अन्न घर में नहीं आ पाता। रात होते ही गाँववाले घोड़े, गाय, बैल और भैंस छोड़ देते हैं। पशु खेत चोपट कर देते हैं। रात-रात-भर जगकर खेती की रक्षा करनी पड़ी। खेत कट जाने पर खलिहान में भी हमला करने से नहीं चूकते। बहुत जागने से देह में बेतरह दर्द है, सिर घूम रहा है, नींद के मारे आँखें दुख रही हैं। जरा पास की नदी में स्नान

तो कर आऊँ। पर खलिहान की रक्षा कौन करेगा
हाँ, अभी मँगरा आया है। मँगरा! मँगरा!

मँगरा—(प्रवेश करके) क्या कहते हैं मालिक ?

वीरेन्द्र—देखो, मैं नदी में स्नान करने जा रहा हूँ। तू इस
जगह बैठ। ऐसा न हो कि कोई हाथ मार ले जाय

मँगरा—ऐसा नहीं हो सकता मालिक! मेरे जीते-जी कौन मा
का लाल इधर आवेगा ?

वीरेन्द्र—तुझपर मुझे पूरा विश्वास है। तुम्हीं लोगों के बल
पर यह जमींदारी खरीदी गई थी। पर कुछ-का-कुछ
हो रहा है।

मँगरा—मालिक! सौ जुआड़ी में एक साधु क्या कर
सकता है ?

दूसरा दृश्य

[एक जमींदार का दालान]

इकबालगिरि—मैं हजार कोशिश करता हूँ कि यह दुष्ट वीरेन्द्र
इस गाँव से एक पाव भी अन्न न ले जा सके; पर
यह इतना जबरदस्त है कि दिन-रात खेत की
चौकसी करता है। हर साल काफी अन्न पैदा कर
ले जाता है। इस वर्ष इस गाँव में घर भी बना

लिया। यहाँ के चंद आदमी भी अब इसकी राय में रहते हैं; उन्हें मिलाकर मुझे ही कष्ट में डालना चाहता है। मैं भी नोन-सत्तू बाँधकर इसके पीछे पड़ गया हूँ। देखूँगा, इस साल बच्चू कैसे अन्न घर ले जाते हैं।

भैरवगिरि—आपके विचार सवा सोलह आने ठीक हैं। वीरेन्द्र बड़ा पाजी है। उद्योग और अध्यवसाय का तो मानों अवतार ही है। जेठ की धधकती दुपहरी, भादो की अँधेरी रात, पूस-माघ की कड़ी सर्दी की उसे तनिक परवा नहीं। जहाँ उसका प्रवेश हुआ कि हाथ-पाँव फैलाना शुरू करता है। नीति में और भी कुशल है। सभी को किसी-न-किसी उपाय से अपने वश में कर लेता है। तभी तो आप-जैसे जोरा-वर आदमी को वह कुछ नहीं समझ रहा है। यह सुनकर कि उसने आपको सताने के लिये कमर कस ली है, मेरी देह में आग लग गई है। बस, आपकी आज्ञा की देर है। संकेत पाते ही हमलोग उसे इस गाँव से वैसे ही निकाल देंगे जैसे मतवाला भैंसा निर्बल भैंसे को खदेड़ देता है।

रतना—(अचानक आकर) सरकार! सलाम।

इकबाल०—मस्त रहो। कहो, क्या समाचार है?

रतना—सरकार! अभी वीरेन्द्र नहाने गया है। उसका विश्वासी नौकर मँगरा खलिहान की रक्षा कर रहा था। कल वह रामपुर गया था। वहाँ से अभी-अभी लौटा है। अठारह मील की दूरी तय करने के कारण, रास्ते का मारा, थका-माँदा खर्राटे ले रहा है। क्या आज्ञा होती है?

इकबाल०—बेवकूफ! पूछने की क्या जरूरत? बात तो मालूम ही है। पास ही में पचास बैल चर रहे हैं। चरवाहों को इशारा कर दो, बैलों को खलिहान की ओर हाँक दें। दँवे हुए अन्न को तुमलोग उठाकर नौ-दो-ग्यारह हो जाओ। वीरेन्द्र के आते-आते खलिहान की थोड़ी सफाई हो जाय। यदि मँगरा जाग उठे, तो 'पदं मुक्कं चपेटं च' से उसकी अच्छी मरम्मत कर दो।

[रजनी का प्रवेश]

रजनी—प्राणप्यारे! यह आपके मुँह से क्या सुन रही हूँ? यह कैसी सलाह?

इकबाल०—प्यारी, सुन ही चुकी, तो फिर सुनने की आवश्यकता?

रजनी—आप सदा बिना विचारे काम कर बैठते हैं। इसका कड़वा नतीजा स्वयं भोगते हैं और अपने कुटुम्बियों को भी चखवाते हैं। बेचारा वीरेन्द्र दिनरात कलपता है। बताइये, उसने आपका क्या नुकसान

किया है? पोठिया की तरह रुपये गिनकर उसने आपसे जमीन खरीदी है। अभी तक आप उसका कुछ धारते ही हैं। हमेशा आप मुकदमे के पीछे हैरान रहते हैं। मुकदमेबाजी से ही आपकी ऐसी दुर्दशा हुई है कि आज इस गाँव में दूसरा हिस्सेदार घुस आया। यदि आपकी आदत न छुटी, तो शेष बारह आने हिस्से से भी हाथ धोना पड़ेगा।

इकबाल०—(बिहँसकर) आज से तुम मेरा गुरु बन बैठी। तुम स्त्री हो। जमीन्दारों की बुद्धि और चाल समझना क्या खेल है? अगर जमींदारी आसान काम रहती, तो सभी लोग बाबू और इज्जतदार बन जाते।

रजनी—मैं मानती हूँ, मै निर्बुद्धि हूँ; आपके ऐसा ज्ञानी और गुरुघंटाल नहीं! पर आप छाती पर हाथ रख कहें, आपके ये काम कहाँ तक उचित और धर्मानुकूल हैं? आपकी आँखों में पट्टी बँधी हुई है!

इकबाल०—अच्छा, तुम्हीं बताओ, तुम्हें ठीक सूझता है न?

रजनी—आप बुरा न मानें, आप धर्म की राह से कोसों दूर हो गये हैं। आप अपने लड़कों को क्यों बरबाद कर रहे हैं? पिता के चरित्र का कितना प्रभाव पुत्रों पर पड़ता है, इसपर कभी आपने विचारा है? मनुष्य के जीवन का लक्ष्य मुकदमेबाजी, पराये की निन्दा,

दूसरे का अहित, आपस का विरोध और ईर्ष्या-द्वेष ही नहीं है। इस जीवन के लक्ष्य और भी हैं। मैं प्रार्थना करती हूँ, वीरेन्द्र के छः हजार रुपये किसी प्रकार चुकाने का उपाय करें, अपनी गृहस्थी सँभालें, सन्तानों की शिक्षा का उचित प्रबंध करें, गरीब और असहाय की यथोचित सहायता किया करें। यही गृहस्थ का कर्त्तव्य है।

इकबाल०—अच्छा, बहुत बकी। अब यहाँ से जाओ। हरएक आदमी का काम जुदा-जुदा होता है। तुम्हारा जो काम है, तुम करो। मुझे अपनी राह चलने दो। जो मैं करता हूँ, खूब सोच-समझकर। तुम्हारी सलाह की जरूरत नहीं।

रजनी—ऐसी बात?

इकबाल०—और क्या, मैंने सारे गाँव से राय लेकर स्थिर किया है कि यह गाँव छोड़े बिना वीरेन्द्र का उबार नहीं है। उसे मेरे पाँवों पर नाक रगड़ना पड़ेगा। या तो मेरी जमींदारी वापस कर भागेगा, या अपने प्राणों से हाथ धोवेगा।

रजनी—हाय! हाय!! यह क्या मैं सुन रही हूँ—स्वामी! ऐसे पाप-कर्म में अपनेको न लगाओ—नाथ! बुरे कर्मों के फल सदा बुरे होते हैं। कुत्सित कर्म करनेवालों

की उन्नति संभव नहीं। तुम्हारी बुद्धि मारी गई है। ईश्वर के यहाँ तुम क्या जवाब लगाओगे? एक तो वीरेंद्र तुम्हारा महाजन है, दूसरे वह सदा तुम्हारे भय से काँपता रहता है। ऐसे आदमी को सताकर तुम कभी नफा नहीं उठा सकते। मान लिया कि सारा गाँव तुम्हारी उँगली के संकेत पर नाच रहा है, पर तुमको और तुम्हारे गाँववालों को भी बचानेवाला कोई है?

इकबाल०—मुझे बहस से कोई मतलब नहीं। तुम घर के अंदर रहनेवाली अबला हो। तुम्हें दुनिया के धंधों से सरोकार क्या? अतः मेरे मामले में दखल देकर तुम सीमा से बाहर न जाओ। स्मरण रखो, 'इकबाल' इकबाली आदमी है।

तीसरा दृश्य

[नदी]

वीरेंद्र—भगवती गंगा की अनुचरी! तुझे प्रणाम है। मा! कबतक वधिकों का निशाना बना रहूँगा? भाग्य! तू खोटा है। शांति! तू कहाँ चली गई? इस राक्षस-पुरी में 'जिमि दसनन महँ जीभ बिचारी' की दशा

मेरी हो रही है। मैं अकेला। घर दो मील दूर। पिता वृद्ध। स्त्री रोगी। चित्त अधीर। शत्रु इतने प्रबल—मेरी हत्या करने पर उतारू। गंगे! तू ही मेरी रक्षिका है। शक्ति दो। धैर्य दो। (स्नान करने और सूर्य को जल देने का अभिनय) भगवन् सविता! यह पवित्र जल तुम्हे अर्पित है। प्रभो! तुम सभी प्राणियों के कार्यों के द्रष्टा हो। मंगलमय परमेश्वर के तुम और चंद्र दो नेत्र हो। मेरी रक्षा तुम्हारे बिना कौन कर सकता है? (चिल्लाहट सुनकर) एँ! यह आवाज कैसी! मँगरा चिल्ला रहा है। (दौड़ता हुआ खलिहान में पहुँचता है।)

मँगरा—मालिक! आपके उधर जाते ही नींद ने मुझे धर दबाया। इसी बीच में ये बैल खलिहान में घुस पड़े। इनकी आवाज सुनकर मैं जागा और आवाज दी। ये बैल इतने हरहे हैं कि दस को एक ओर से खदे-ड़ता था तो दस दूसरी ओर से घुस पड़ते थे। मैं पसीने-पसीने हो गया। अब एक पाव भी अन्न घर जाना मुश्किल है। खेत में तो अंधेर हुआ ही, अब खलिहान पर भी यह आफत!

वीरेन्द्र—(खलिहान को गौर से देखकर) ओह! सब चौपट हो गया। मँगरा! जान पड़ता है, तू बहुत देर करके

उठा। दँवा हुआ अन्न लगभग चालीस मन रहा होगा, बैल उतना खा नहीं सकते। क्या डाकू भी आ पहुँचे थे?

मँगरा—पचीस-तीस आदमियों को सिर पर बोरे ले जाते हुए उस रास्ते से देखा।

वीरेन्द्र—यह देखो! एक बोरा यहाँ भी छूट गया है। अनेक मनुष्यों के चरण-चिह्न तुझे नहीं सूझते? क्या तुझे कुम्भकर्णी नींद चली आई थी कि थोड़ी ही देर में इतनी बड़ी दुर्घटना हो गई?

मँगरा—(काँपता हुआ) हाँ मालिक! रात का जगा हुआ और रास्ते का मारा गाढ़ी नींद में पड़ गया। तभी तो इन्हें मौका मिला। पर हमारी राय है कि रहम से अब काम नहीं चलेगा, इन बैलों को मैं काँजी-घर पहुँचा आता हूँ। लेकिन कौन-कौन नाज उठा ले गये, इसका पता लगाना तो कठिन मालूम होता है।

वीरेन्द्र—तुझसे मैं सहमत हूँ। सहिष्णुता की भी सीमा होती है। 'अति संघर्षन करै जो कोई, अनल प्रगट चंदन ते होई।' ये इकबालगिरि के बैल हैं। दो-दो चरवाहे रहते हुए भी ऐसा उपद्रव! उन्होंने मुझे भिखारी बनाना ठान लिया है। अभी तक मै पूज्य गुरु के उपदेशानुसार काम करता आया। वे सदा कहा

करते हैं—'जो तोको काँटा बुवे, ताहि बुवे तू फूल।' पर उनकी बात मुझे अब नहीं भाती। मुझे तो लोकमान्य तिलक की नीति पसंद है—'शठं शाठ्यं समाचरेत्।' बालू पेरने से कहीं तेल निकलता है? अरे भला अकेले इन बैलों को तू मवेशी-खाना कैसे पहुँचा सकेगा—अभी तक और बनिहारे अपने घर से लौटे नहीं। अच्छा तो यह होगा कि मैं भी थोड़ी दूर तक तेरा साथ दूँ।

[नदी की धारा के समीप इकबाल का अपने आदमियों के साथ लठ लिये देख पड़ना]

इकबाल—क्यों जी वीरेन्द्र, इन बैल-बापों को कहाँ लिये जा रहे हो? बाप पर भी कोई इतना नाराज होता है! बाप तो केवल पैदा करता है। ये बैल जमीन फाड़कर उसमें से अन्न पैदा कर सभी मनुष्यों का भरण-पोषण करते हैं। तुम्हें इन पर इस कदर बेरहम होना चाहिये था? तुमने इन बैलों को खूब मार मारी है। देखो तो। लाठी की चोट से इनकी देह से खून टपक रहा है।

वीरेन्द्र—राम! राम! गिरिजी, आप धन और धर्म दोनों ले रहे हैं। क्या एक लाठी भी इन बैलों की पीठ पर पड़ी है? चलकर आप स्वयं देख लें, आपकी

वजह से मुझे कितना नुकसान उठाना पड़ा है। ये बैल आपके हैं, मेरे नहीं। अतः मैं अपने बाप को नहीं लिये जा रहा हूँ, आपके बापों को फाटक देने जा रहा हूँ।

इकबाल—बेशक, ये बैल मेरे बाप हैं। मैं इनकी कमाई खाता हूँ और इनकी रक्षा के लिए आज तुमसे लोहा लूँगा।

वीरेन्द्र—यही इरादा है, तो मैं भी तैयार हूँ।

इकबाल—भैरव! भैरव! क्या देखते हो, जरा चाचा की मरम्मत कर दो।

[लाठियों की वर्षा!]

वीरेन्द्र—(दो-चार हाथ चलाकर गिर पड़ता है) बाप रे बाप! बचाओ रे! जान गई। दुहाई गिरिजी की, जान बख्श दीजिये। मुझे संपत्ति से कोई काम नहीं।

इकबाल—बहादुरो, कुछ भी खौफ नहीं। तुमलोगों की रक्षा के लिए मैं अपनी सारी जायदाद फूँक डालूँगा। जैसे हो, आज इसका काम तमाम कर दो।

[चौकीदार के साथ मँगरा का प्रवेश और बदमाशों का भागना]

चौकीदार—चुप रह हरामी, ऐसा भी कमीना नौकर होता है कि मुसीबत में मालिक को छोड़कर भाग जाय!

मँगरा—भाई, स्वामी को बचाने की नीयत से मैं आपके पास दौड़ा गया था। बताइये, अकेला मैं छः लठधरों के

सामने क्या करता ? कहीं एक चना भी भाड़ फोड़ता है ? देखिये, आपको देखकर वे लोग भाग चले।

चौकीदार—यहाँ से पहचानना अति कठिन है।

मँगरा—कठिन क्या है ! आगे-आगे इकबाल और भैरव दौड़े आ रहे हैं। उनके पीछे झुमना और धूपना। उनके पीछे दो और आदमी हैं, जिन्हें मै नही पहचानता।

चौकीदार—तुम्हारा अनुमान ठीक है। मुझे भी ऐसा ही मालूम हो रहा है।

मँगरा—चौकीदार भइया, दौड़ो और उन लोगों को गिरफ्तार कर लो।

चौकीदार—बेवकूफ ! क्या मेरी जान भारी हुई है ? अगर इस वक्त चूँ भी बोलूँगा तो इकबाल मेरी पीठ का एक परत चमड़ा छुड़ा देगा।

मँगरा—जब इतनी भी हिम्मत नहीं, तब यह काला मुरेठा और काला कुर्ता व्यर्थ पहनते हो।

चौकीदार—(बात फेरकर) दौड़ो, दौड़ो। वह देखो, लाश पड़ी है और एक स्त्री उसके मुख में पानी डाल रही है।

मँगरा—(लाश के पास जाकर) हा मालिक ! आज आपकी क्या दशा हुई। हमेशा मैं आपसे कहता रहा कि यह रुहेलों की पल्ती है, आप दो-चार पहलवान

अपने साथ रखें; पर आपने मेरी एक भी न सुनी—
अपने आत्मबल पर डटे रहे। इसका फल आप-
को छोड़ दूसरा कौन भोगे? अब भरतपुर में मैं
अपना मुँह कैसे दिखाऊँगा! आपके घर यह खबर
किस मुँह से सुनाऊँगा!

चौकीदार—(डाँटकर) अरे अभी धुकधुकी चल रही है, इसके
बदन को पानी से तर रखो। तुरत मैं चार कहार
लिये आता हूँ। लाश को निशापुर-थाने में चालान
करना होगा। वहाँ अस्पताल भी है।

स्त्री—भाई, तुम लोग न डरो। इसे कुछ नहीं होगा। पर इस-
के सिर से जो लहू निकल रहा है, उसे तुरत रोकना
चाहिये।

मँगरा—(सिर के घाव को उँगली से दबाता है) बहन! लहू कुछ
बन्द हो गया। अब मैं क्या करूँ!

स्त्री—इसकी ओढ़ी धोती के तीन टुकड़े करो। हरएक को
जल से तर कर चोट पर रखो। कपड़े के एक टुकड़े
को इसके सिर पर रख बार-बार जल छिड़को।

मँगरा—अच्छा। (कपड़ा भिगोकर सिर पर देता है)

स्त्री—भाई, बड़ी कड़ी धूप है। लाश को एक तरफ तुम पकड़ो,
दूसरी ओर मैं। टाँग-टूँगकर इसे पेड़ के नीचे ले

चलें। वहाँ इसे ठंढी हवा और वृक्ष की शीतल छाया भी मिलेगी।

(पेड़ के नीचे लाश ले जाते हैं)

भँगरा—बहन, यह देखो, मालिक ने अभी आँखें खोलीं और फिर झट बंद कर लीं। (छाती पीटकर जमीन पर गिर पड़ता है)

स्त्री—(डाँटकर) चुप रह ना-समझ, यह धैर्य-धारण करने और सेवा करने का अवसर है। मन की दुर्बलता को रोककर अन्तःकरण से इसकी सेवा करो। तब तो इसके बचने की आशा है, नहीं तो इसका अन्त ही समझो। (नदी की ओर इशारा कर) जाओ, नदी की धारा के समीप मेरा भरा घड़ा रखा है। उसे उठा लाओ। उसी के जल से हमलोग लाश को तर रखें।

भँगरा—(भरा घड़ा लाकर रखते हुए) देवी, यह देखो, स्वामी ने फिर आँखें खोलीं।

(दो आदमियों के साथ दो चौकीदारों का प्रवेश)

पहला चौकीदार—भाई पीरबक्स, ऐसा भी हृदय-हीन मनुष्य होता है जिसमें थोड़ी भी दया नहीं। सारे गाँव का कोना-कोना छान डाला, एक आदमी भी न मिला। इकबाल ने गाँव में ढिंढोरा पिटवा दिया है

कि कोई आदमी लाश के नजदीक न जाय; अगर जायगा तो उसकी भी वीरेन्द्र की दशा होगी। यदि तुम मदद न करते, तो ये दोनों आदमी भी न मिलते।

पीरबक्स—अभी बात करने का वक्त नहीं है। चलो, लाश उठवावें। इकबाल बड़ा जालिम है। इस तरह की बातचीत से कहीं ये आदमी भड़क न जायँ।

चौथा दृश्य

[पुलिस-स्टेशन (थाना)]

दारोगा—मैं बड़े असमंजस में पड़ा हूँ। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ। एक ओर रुपये की थैली, दूसरी ओर पीड़ित मनुष्य की सेवा और अपना कर्त्तव्य। एक ओर एक जमींदार के प्राणों की रक्षा, दूसरी ओर एक प्रतिष्ठित मनुष्य की हत्या। (सामने डोली रखी जाते देखकर) इकबाल-गिरिजी, आप अभी मेरे कमरे के अंदर जा बैठें।

चौकीदार—(झुककर) सलाम सरकार!

दारोगा—(नजर बदलकर) क्या चाहता है रे!

चौ०—हुजूर, प्रपंचपुर के जमींदार इकबालगिरि ने वीरेन्द्र को मार डाला है। सिर्फ धुकधुकी चल रही है।

दारोगा—जब धुकधुकी चल रही है, तब कैसे मार डाला रे! हरामी का पिल्ला!

चौ०—सरकार, मैं ठीक कह रहा हूँ। दो घंटे से भी अधिक समय बीत गया, पर अभी तक वह होश में नहीं आया।

दा०—ओहो! (उठकर डोली के समीप जाता और लहू से लथपथ लाश देखकर विस्मित हो जाता है) नादान ने इसे मार ही डाला! अच्छा, इसका बयान तो लेलूँ। वीरेन्द्र! (जोर से पुकारता है)

(वीरेंद्र आँखें खोलने की कोशिश करता है,

पर वे पुनः स्वयं बंद हो जाती हैं)

दा०—(चौकीदार की ओर मुड़कर) चौकीदार, वीरेंद्र का कोई अपना आदमी यहाँ पर मौजूद है जो इसकी हालत बयान करे?

चौ०—हाँ हुजूर, मँगरा चमार है, उसी ने मुझे सूचना दी थी।

दा०—उसे बुलाओ, मैं स्टेशन-डायरी में उसका बयान दर्ज कर लूँ, तब लाश अस्पताल में जाँच के लिए भेजी जायगी।

चौ०—(चारों ओर मँगरा की तलाश करने पर उसे न पाने के कारण घबराकर) हुजूर, निशापुर की सीमा के

पास वह बैठकर पेशाब करने लगा और मैं डोली के आगे-आगे चला। अभी तक वह नहीं आया।

दा०—हरामी का बच्चा! इस फसाद में तेरा जरूर हाथ है। अभी उसे हाजिर कर।

(एक बूढ़े के साथ मँगरा का प्रवेश)

मँगरा—सलाम सरकार।

चौकीदार—हुजूर, यही मँगरा है।

दारोगा—पाजी, तू कहाँ गायब हो गया था?

मँगरा—पृथ्वीनाथ! छोटे सरकार वीरेन्द्रजी के बाप बड़े सरकार को खबर देने भरतपुर गया था। इसी से देर हुई।

दारोगा—(मंद मुसकान के साथ) अच्छा, यह बता कि तेरे मालिक वीरेन्द्र को चोट कैसे लगी?

[मँगरा बयान करता है और दारोगा एक रद्दी कागज पर लिखता है]

दारोगा—हरिसिंह, इस कागज के साथ लाश को डाक्टर साहब के पास जाँच और रिपोर्ट के लिये ले जाओ।

हरिसिंह—जो आज्ञा।

दारोगा—(अपने बैठकखाने की ओर मुड़कर) इकबाल, तुमने खून कर दिया। अभी मैं तुम्हें गिरफ्तार—

इकबाल—(दारोगा के पाँवों पर गिरकर) दुहाई दारोगाजी की, मेरी इज्जत बचाइये। मेरी प्रतिष्ठा आपके हाथ

में है। मेरी सारी संपत्ति आपके चरणों पर निछावर है।

दारोगा—(सोच में पड़कर) अच्छा, पहली तरकीब यह है कि डाक्टर के लिये आप एक हजार रुपये तुरत हाजिर करें और थाने की पूजा के लिए दो हजार। यदि तीन हजार रुपये इस वक्त आप खर्च करने के लिए तैयार हों, तो आपकी रिहाई संभव है। नहीं तो इस मुकद्मे में आप और आपके नौकर सभी मुजरिम हुए।

इकबाल—अशरण-शरण, इस समय इतने रुपये कहाँ से आवेंगे ?

दारोगा—(त्योरी बदलकर) नबीबक्स, हथकड़ी लाओ।

इकबाल—हुजूर, मुझे दो घंटे की फुरसत दें। मैं घर जाता हूँ। मेरी स्त्री के पास दो हजार के सोने के गहने हैं। उन्हें ले आता हूँ। अगर उन गहनों को बंधक रख मुझे कोई रुपये दे, तो मैं तुरत रुपये आपकी सेवा में हाजिर करूँगा।

दारोगा—निशापुर में बड़े-बड़े धनिक बनिया हैं। आपको रुपये आसानी से मिल जायँगे।

[अस्पताल की एक कोठरी के एक कोने में वीरेन्द्र एक शय्या पर लेटा है। डाक्टर घावों को धो-धो कर मरहम-पट्टी कर रहा है।]

डाक्टर—(कम्पाउंडर से) देखो, यह सिर का घाव बड़ा खतरनाक है। इस को एक प्याला ब्रांडी पिलावो।

(कम्पाउंडर एक प्याले में शराब लाकर वीरेन्द्र को पिलाता है)

नरपति—डाक्टर साहब, मुझ अनाथ को शरण दीजिये। मुझे एक ही पुत्र वीरेन्द्र हुआ। यही मेरे बुढ़ापे का सहारा और मुझ अंधे का 'श्रवण' था। इसकी रक्षा कर मुझे बचाइये (डाक्टर के चरणों पर एक सौ रुपये का नोट रख छाती पीटकर जमीन पर गिर पड़ता है)

डाक्टर—रत्नेश, दौड़ो—दौड़ो, बुड्ढे के सिर पर पानी के छींटे दो। यह बेहोश-सा हो गया है।

नरपति—(होश में आकर) डाक्टर साहब, मेरे 'श्रवण' की रक्षा करें।

डाक्टर—बाबा, आप विश्वास रखें, दो-तीन घंटों के अंदर वीरेन्द्र बोलने लगेगा। इस समय इसका बोलना अच्छा नहीं। आप धीरज धरें। यह नोट अपने पास रखें।

नरपति—(हाथ जोड़कर) डाक्टर साहब, मैं आपको क्या दे सकता हूँ? मुझे केवल वीरेन्द्र के घावों का एक सर्टिफिकेट देने की कृपा करें। मैं कल रत्नपुर की कचहरी में नालिश दायर करूँगा।

डाक्टर—बाबा, आप बेतरह घबरा गये हैं। इस समय मुसीबत

में आप पड़े हैं। मेरा धर्म आपकी सहायता करना है। इस रुपये को आप दूसरे काम में लगावें। मैं आपको सर्टिफिकेट एक घंटे के बाद दूँगा। मैं भी मनुष्य हूँ, हृदय रखता हूँ। जहाँ तक संभव है, मैं आपकी मदद करूँगा।

[एक सिपाही का पत्र के साथ प्रवेश और डाक्टर साहब का प्रस्थान]

पाँचवाँ दृश्य

[दारोगा का क्वार्टर]

इकबालगिरि—दारोगा साहब, मैं अभी तक सोलह सौ रुपयों का प्रबन्ध कर सका। शेष रुपये जमीन बेचकर दस दिन के भीतर श्रीचरणों पर रखूँगा।

दारोगा—बहुत कठिन बात है। मेरी जिम्मेवारी कितनी बड़ी है, यह आप नहीं समझते। खैर, लाइये। (इकबाल के हाथों से सौ-सौ रुपये के सोलह नोट लेता है)

डाक्टर—(प्रवेश करके) आदाब दारोगाजी, आपने भयंकर 'केस' भेजा है। शायद ही वीरेन्द्र बचे।

दारोगा—(इकबाल की ओर देखकर) आप थाने में चलें, मैं अति शीघ्र आता हूँ। (डाक्टर साहब से) जनाब, यह आप क्या कहते हैं। जिस कदर हो, इकबाल को बचाइये। एक मामूली रिपोर्ट दे दें।

डाक्टर—आप यह क्या कह रहे हैं ? यह मुकदमा दौरे का है। यदि आप स्वयं अपने हाथ में मुकदमा नहीं लेते, तो वीरेन्द्र के पिता ने कल रत्नपुर की कचहरी में मुकदमा दायर करने का निश्चय कर लिया है। उसे यह खबर मिल चुकी है कि इकबाल आपके यहाँ ... रूप कर रहा है। मैंने उसे रिपोर्ट की एक प्रति भी दे दी है।

दारोगा—(अति व्यग्रता से) जनाब, आपने यह क्या किया ! (पाकेट से सौ-सौ रुपये के दो नोट निकालकर) यह लीजिये, आपकी सेवा में इकबाल ने ये दो पत्रपुष्प भेजे हैं। कृपया इन्हें स्वीकृत कर उसका उद्धार कर दें।

डाक्टर—दारोगाजी, यह मेरे सिद्धान्त के विरुद्ध है। मैं ऐसा काम हरगिज नहीं कर सकता। वीरेन्द्र और उसके पिता की दयनीय दशा ने मुझे कातर बना दिया है। रुपयों पर मै लात मारता हूँ। मानव-सेवा डाक्टरों का काम है।

दारोगा—डाक्टर साहब, यह मैं क्या सुन रहा हूँ ! क्या आप मेरी इच्छा के विरुद्ध चलेंगे ?

डाक्टर—आपकी इच्छा के विरुद्ध चलने का कोई सवाल नहीं है। यह तो अपने-अपने कर्त्तव्य-पालन का प्रश्न है।

दारोगा—आप तो बड़े कर्त्तव्य-परायण निकल पड़े!

डाक्टर—आप जैसा समझें। आदाब। मैं चलता हूं। रोगी की अवस्था अच्छी नहीं है।

—•••—

दूसरा अंक

पहला दृश्य

[रत्नपुर-सब-डिवीजन की कचहरी]

चपरासी—जिसको दरख्वास्त देनी हो वह दरख्वास्त दे।

(तीन बार आवाज देता है)

मजिस्ट्रेट—उँह, इस बूढ़े को क्या सुनाना है। लाठियों के सहारे चल रहा है। आँख की ज्योति भी मंद हो गई है। हाथ-पाँव और सिर बुढ़ापे के कारण काँप रहे हैं। (चपरासी को संकेत करके) बूढ़े को कठघरे में लाओ।

चपरासी—(बूढ़े से) बोलो, सच-सच कहूँगा, झूठ बयान कभी न करूँगा; ईश्वर की शपथ खाता हूँ।

नरपति—(दुहराता है)

मजिस्ट्रेट—कहो, तुम्हारी क्या फरियाद है?

नरपति—दुहाई सरकार की, मै कहीं का न रहा।

मजिस्ट्रेट—बेकार न बको। कहो, तुम्हारी किस बात
दरखास्त है ?

नरपति—हुजूर, प्रपंचपुर के जमीन्दार इकबाल-गिरि ने
इकलौते पुत्र वीरेन्द्र को पाँच आदमियों के स
ऐसी मार मारी है कि वह बोलने और चलने
भी असमर्थ है। बचने की कोई आशा नहीं। निश
पुर के अस्पताल में बेहोश पड़ा है। डाक्टर
सर्टिफिकेट दरखास्त में नत्थी है। हुजूर मेहरबा
करके मुलाहजा फरमावें।

मजिस्ट्रेट—इकबाल ने तुम्हारे लड़के को क्यों मारा ?

नरपति—उसने मेरे खलिहान में बैलों को लगा दिया था।
मेरा लड़का मवेशियों को फाटक लिये जा रहा था
इकबाल ने पाँच आदमियों के साथ उस पर हमल
किया—मवेशियों को लूट लिया—मेरे पुत्र को घात
चोट पहुँचाई और खलिहान से सारा अन्न जब
दस्ती उठा ले गया। मेरे पुत्र की दशा खतरना
है। (फूट-फूटकर रोने लगता है)

मजिस्ट्रेट—(बड़े गौर से दरखास्त और रिपोर्ट पढ़कर) तुमने
निशापुर-थाने में इत्तला क्यों नहीं दी ?

नरपति—दी थी; पर दारोगा ने अनसुनी कर दी।

मजिस्ट्रेट—तुम्हारे मुकदमे की तारीख २६ मार्च पड़ी। तुम

अपने गवाहों के साथ उस तारीख क यहाँ हाजिर होना।

(निशापुर–थाना)

दारोगा—अब मैं क्या करूँ! नरपति सीधे अदालत चला गया। मुकद्मा इतना पेचीला और डाक्टर इस तरह बरखिलाफ। एक ओर इकबाल की गिड़गिड़ाहट, दूसरी ओर पैसे का प्रलोभन। आती हुई लक्ष्मी के विरुद्ध टट्टर लगाना भी अनुचित है। हाँ, स्टेशन–डायरी में तो यह दर्ज कर दूँ कि मुद्दई बेहोश था; इसी कारण मैंने उसे अस्पताल भेज दिया।

सिपाही—दारोगाजी, सड़क पर सुपरिंटेंडेंट साहब की गाड़ी खड़ी है।

दारोगा—यह क्या!

सुपरिंटेंडेंट—(आफिस में प्रवेश कर) दारोगा! तुम क्या करता है? मै बहुत देर से बाहर खड़ा था। तुम घर में बैठा आराम करता है? इसी कदर गवर्नमेंट का काम होता है?

दारोगा—नहीं हुजूर, मै बैठा न था। परसो प्रपंचपुर में एक बड़ा संगीन मुकद्मा हो गया है। उसी की तहकी-कात के लिए आज वहाँ जा रहा हूँ। जाने के पहले हुजूर के पास रिपोर्ट भेज रहा था।

सु०—कैसा मुक़द्दमा है ?

दा०—प्रपंचपुर के जमींदारों में बड़ी मार-पीट हुई है। दोनों तरफ के आदमी ज़ख्मी हुए हैं। इनमें दो तो बेतरह घायल हैं।

सु०—स्टेशन-डायरी लाओ।

दा०—(मँगाकर) हुज़ूर, यही है।

सु०—पढ़ो।

दा०—ता० १० मार्च को मंगल के दिन दस बजे इक़बालगिरि के बैलों को हाँककर वीरेन्द्र अपने नौकर मँगरा के साथ काँजी-घर ले जा रहा था। इक़बाल ने उससे बहुत प्रार्थना की, पर वीरेन्द्र कुछ विचार न कर उनपर गालियों की बौछार करने लगा। इस पर इक़बाल के एक आदमी ने वीरेन्द्र पर दो लाठियाँ चलाईं। वीरेंद्र ने भी उस आदमी को घायल कर दिया। इस मुठभेड़ में वीरेन्द्र को कुछ अधिक चोट लग गई। जिस समय वह थाने में लाया गया वह बेहोश था। मैंने उसे अस्पताल भेज दिया।

सु०—इक़बाल का आदमी भी निशापुर के अस्पताल में है ?

दा०—नहीं, चौकीदार से मालूम हुआ कि वह वीरेंद्र के भय से यहाँ न आकर रत्नपुर के सदर अस्पताल में दाखिल हुआ है।

सु०—उस आदमी का कोई सम्बन्धी थाने में इत्तला करने आया?

दा०—नहीं, गरीब-परवर!

सु०—तब तुम्हें उसके विषय में ये बातें कैसे मालूम हुईं?

दा०—चौकीदार और वीरेन्द्र के विश्वासी नौकर मँगरा के बयान से।

सु०—यह घटना तो परसों की है; आज तुम क्यों जाँच-पड़ताल करने जाते हो? कल क्यों नहीं गये?

दा०—कल सेंधमारी के दो मुकदमों की जाँच में चला गया था। रत्नपुर की अदालत में जमादार की बुलाहट थी! अतः आज वहाँ जाने का मैंने निश्चय किया है।

सु०—अच्छा, मै वीरेन्द्र को देखना चाहता हूँ। मेरे साथ अस्पताल अभी चलो।

दा०—(मन-ही-मन) हा परमात्मा, कैसी बला में फँसा। स्टेशन-डायरी में कुछ और लिखा है, उसके शरीर पर कुछ और ही चोटें हैं!

सु०—क्या सोचते हो? शीघ्र चलो।

दूसरा दृश्य

[प्रपंचपुर]

इकबाल—भैरवगिरि, चिन्ता न करो। मामला सीधी राह पर है। यद्यपि निशापुर-अस्पताल के डाक्टर ने मुकदमा

बिगाड़ दिया, तथापि दारोगा साहब ने ऐसा बताया है कि हमलोग अब बालबाल बच जायँगे।

भैरव—गिरिजी, मेरा हृदय काँप रहा है। मैं निहायत आदमी हूँ। इधर-उधर से जाल-फरेब कर कुछ कमा लाता हूँ। वही मेरे बच्चों की जीविका का सहारा है। मुकदमा दौरे का सुनकर मेरा होश उड़ गया है। कृपया कहिये कि कौन-सी तरकीब दारोगाजी ने बताई है जिससे हमलोगों की नैया मँझधार से पार उतर जायगी।

इकबाल—भैरव, दौरे का मुकदमा हरगिज यह नहीं हो सकता। उड़ती खबर पर सहसा विश्वास कर लेना नहीं। अब रही दारोगाजी की तरकीब बताने की बात, तो गुप्त भेद किसी से कहना उचित नहीं। पर आपने मेरे लिये जान संकल्प कर दी है; अतः आपसे रहस्य खोलने में कोई आपत्ति नहीं है। मैंने भी 'काउंटर केस' (Counter Case) किया है—अर्थात् वीरेन्द्र पर नालिश की है। रतना का सिर पत्थर से फोड़ कर, छ-सात जगह उसके शरीर में लाठी के घाव कर, उसे रतपुर के अस्पताल में दाखिल करवाया है। उसकी ओर से भी दरखास्त, डाक्टर के सर्टिफिकेट के साथ, अदालत में पड़ी है। (एक सिपाही का प्रवेश)

सिपाही—इकबाल-गिरि का कौन घर है? इसी बस्ती में वह रहता है? बड़ा जालिम है! उसका नाम सुनते ही इस गाँव के आदमी काँपने लगते हैं। बहुतों से मैं-ने उसका घर बतलाने के लिए कहा; पर कोई बताना कबूल नहीं करता। गजब का आदमी है। यही तो बस्ती में सबसे बड़ा घर है। यहीं वह रहता है?

कबाल—क्योंजी, तुम्हारी जीभ पर लगाम नहीं! क्या तुम्हें कभी जमींदारों से काम नही पड़ा?

पाही—लगाम घोड़े की जीभ पर लगाई जाती है, मनुष्य की जबान पर रखने की चीज नहीं है। जमींदार की बात आप क्या करते हैं; वे हम सिपाहियों के हाथों के खिलौने हैं।

कबाल—तुम्हारे सिर पर शैतान तो सवार नहीं है?

पाही—सिर से शैतानों को ही हमलोग हटाते फिरते हैं।

कबाल—चुप रहो, तुम्हें आदमी की पहचान नहीं है।

सिपाही—भगवान् ने मुँह दिया है बोलने के लिये; तब चुप क्यों रहूँ? दिन-रात आदमी ही तो चराता हूँ; तब भला उन्हें कैसे न पहचानूँ?

कबाल—यदि सभ्य और शिक्षित ही रहते तो ऐसी बेहूदा बातें क्यों करते?

सिपाही—बे-अदबों के साथ हमलोग ऐसा ही व्यवहार करते हैं।

इकबाल—(क्रोध से दाँत पीसते हुए) भैरव, इस सिपाही की शोखी देखते हो न ?

सिपाही—मुझसे भूल तो नहीं हो रही है कि मैं इकबाल-गिरि से ऐसी बे-अदबी की बातें कर रहा हूँ ?

भैरव—बेशक तुम भूल कर रहे हो। प्रपंचपुर के एकछत्र राजा इकबाल-गिरि के साथ ही तुम्हारा यह दुर्व्यवहार हो रहा है। आश्चर्य तो यह है कि अब तक तुम्हारा सिर धड़ से जुटा हुआ है !

सिपाही—दफा ३२६ और ३७६ के आधार पर मैं, रमानाथ सिंह सिपाही, मजिस्ट्रेट की आज्ञा के अनुसार, तुम दोनों—इकबालगिरि और भैरवगिरि—को गिरफ्तार करता हूँ। (सीटी बजाता है—चार चौकीदार दो सिपाहियों के साथ दौड़ते हुए आ पहुँचते हैं) इकबाल, यह बताओ कि तुम्हारे चार और आदमी—रतना, सूपना, जुमना और धूपना—इस वक्त कहाँ हैं ? उनपर भी मवेशी लूटने, सख्त जख्म पहुँचाने, नाजायज जमायत बाँधकर खतरा करने और खलिहान से अनाज हटाने के जुर्म हैं।

इकबाल—सिपाहीजी, मै इन दिनों चिन्ता के मारे पागल हो गया हूँ। आपके प्रति जो अनुचित शब्द मुख से निकल पड़े, उनके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। मैं एक

इज्जतदार आदमी हूँ। कृपया ऐसा उपाय रचें कि मेरी प्रतिष्ठा में बट्टा न लगे।

पहला सिपाही—मजिष्ट्रेट साहब की आज्ञा से हमलोग तुमलोगों को गिरफ्तार कर सीधे रत्नपुर-जेल में ले जायँगे। वहाँ कोशिश-सिफारिश से जमानत पर छूट सकते हो। हमलोग निशापुर-थाने के सिपाही और चौकीदार नहीं हैं—याद रहे।

इकबाल—सिपाही साहब, इज्जतदार ही इज्जतदार की बात समझता है। आपलोग भी इज्जतदार हैं। इस इलाके में मैं एक प्रतिष्ठित जमींदार गिना जाता हूँ। मेरे भय से यह इलाका काँपता है। जिस समय मेरी कमर में रस्सा लगाकर आपलोग मुझे रत्नपुर ले चलेंगे, उस समय मैं जीता ही मर जाऊँगा। बेहतर होगा कि मुझे मार ही डालें। मै आपलोगों की पूजा यथाशक्ति करने के लिए तैयार हूँ।

पहला सिपाही—बात तो बहुत कठिन है; पर आपकी इज्जत पर खयाल रखना निहायत जरूरी है। पहले आप यह बतावें कि देंगे कितना ?

इकबाल—इस समय मैं घोर संकट में पड़ा हूँ। पास में पैसे भी नहीं हैं। पर पचास से कम क्या दे सकता हूँ।

पहला सिपाही—खाया भी और पेट न भरा तो इससे भूखों

रहना अच्छा है। हमलोग सात हैं और रुपल्ली पचास! यह सौदा पटनेवाला नहीं!

इकबाल—(पहले सिपाही के कान में) सच कहता हूँ, इस वक्त मेरा हाथ एकदम खाली है। तो भी बीस और दूँगा। बीस-बीस रुपये आप तीनों सिपाही ले लें, और दस रुपये इन चौकीदारों को दे दें।

पहला सिपाही—अच्छा, आदमी ही आदमी का काम करत है। जब आपके ऐसे भले आदमी मुसीबत में पड़ गये हैं, तब हमलोग जरूर आपकी मदद करेंगे आपलोग कल अदालत में जाकर हाजिर हों। वहां जमानत पर छूट जायँगे। मैं रिपोर्ट कर देता हूँ कि अपराधी बस्ती में न थे, कल ही वे रत्नपुर चले गये हैं। पर आप यहाँ के चौकीदार और एक दूसरे प्रतिष्ठित आदमी से इस बात की तसदीक करा दें।

इकबाल—यह आसान बात है। आपलोग आराम से बैठें। जलपान करें। मैं सब ठीक करा देता हूँ।

तीसरा दृश्य

[निशापुर-अस्पताल]

सुपरिंटेंडेंट—(डाक्टर से) मैं वीरेन्द्र को देखना चाहता हूँ।

डाक्टर—इधर हुजूर, इधर। (सिर, पाँव, हाथ, आँख, पीठ और

गर्दन पर पट्टी बाँधे अस्पताल की एक कोठरी में बैठे हुए घायल की ओर इशारा करके) यही वीरेन्द्र है—

सु०—तुम्हारा नाम वीरेन्द्र है ?

(वीरेन्द्र साहब की ओर ताकता है। बोलना चाहता है। मुँह से एक शब्द भी स्पष्ट नहीं निकलता)

डाक्टर—हुजूर, इसकी हालत अभी अच्छी नहीं है। दिन में दो-तीन बार खून उगलता है। सदा बेचैन रहता है। इसे काफी नींद नहीं आती। सिर और लिलार की चोटें संगीन हैं। इस समय इससे बातें करना खतरे से खाली नहीं है।

सु०—जैसी आपकी राय। (बड़े गौर से वीरेन्द्र के प्रत्येक अंग को देखता है)

डाक्टर—यह देखिये, मुँह से खून आ रहा है।

वीरेन्द्र—बाप रे बाप ! जान गई।

सु०—(डाक्टर से) यदि इसको सदर अस्पताल में दाखिल करा दें, तो वहाँ धाइयाँ (Nurses) इसकी उचित सेवा करतीं। आपकी क्या राय है ?

डा०—मैं भी यही सोच रहा था। बड़ी सावधानी से थोड़े ही समय में भेजे जाने से कोई हानि नहीं।

सु०—किस प्रकार की सावधानी ?

डा०—यदि स्ट्रेचर (Stretcher) पर लिटाकर पेंजर-कार

(Pleasure-Car) से भेजा जाय, तो इसे कोई तकलीफ न होगी। सबसे अच्छा साधन तो एम्बुलेंस-कार (Ambulance-Car) है।

सु०—मेरी गाड़ी में बिठाकर मेरी चिट्ठी के साथ इसे शीघ्र भेजिये। मैं, आप और दारोगा के साथ, साइकल पर प्रपंचपुर जाकर घटना-स्थल का निरीक्षण करना चाहता हूँ। इस बीच में मेरी गाड़ी लौट आवेगी।

दारोगा—हुजूर, प्रपंचपुर यहाँ से दो मील दूर है। सड़क भी अच्छी नहीं, पगडंडी से चलना पड़ेगा। रास्ते में एक नदी पड़ती है। कहीं-कहीं खेतों को पार करना पड़ता है। अभी साढ़े नव बज रहा है। हुजूर को सख्त तकलीफ होगी।

सु०—तुम्हारी बातों पर मैं तनिक विश्वास नहीं करता। तुम्हारी स्टेशन-डायरी की बातें तो अभी खूब सच साबित हुईं! ऐसे पेचीदा मुकदमे की तुमने अभी तक जाँच शुरू न की! मजिष्ट्रेट को तुम्हारे कारनामों की खबर मिल गई है। क्या पुलिस-अफसर का यही कर्त्तव्य है? मजिष्ट्रेट की आज्ञा से ही मैं यहाँ आया हूँ।

डाक्टर—हुजूर, साइकल बाहर तैयार है। वीरेन्द्र का पिता नरपति आज ही भरतपुर से प्रपंचपुर गया है। वहाँ

से वीरेन्द्र का समाचार पूछने के लिए तुरत एक आदमी आया है। वह कहता है कि मँगरा भी वहीं है। (आगे बढ़ता है)

चौथा दृश्य

[प्रपंचपुर में वीरेन्द्र का भंडार]

नरपति—मँगरा, खलिहान में जो कुछ बच गया है, उसको भंडार में रख न दो।

मँगरा—मालिक! दो-चार दिन और ठहर जाइये—पहली तारीख गुजरने के बाद मजिस्ट्रेट साहब से हुक्म लेकर—

नरपति—तुम मुझसे भी अधिक बुद्धिमान् हो। मेरी उम्र सतहत्तर वर्ष की है; पर एक भी फौजदारी मुकदमा अबतक न लड़ा। तुमने कहाँ यह सब सीखा?

मँगरा—मालिक, मैं पहले झगरूपुर के जमीन्दार बाबू नीरस सिंह के यहाँ रहता था। वहाँ अनेक ऐसे-ऐसे मुकदमे देखे हैं। बुरा वक्त आने पर घबराना उचित नहीं। 'जैसी बहै बयार, पीठ तब तैसी दीजै'। वह देखिये, तीन साइकलों पर तीन साहब और उनके पीछे दो सिपाही इधर ही चले आ रहे हैं।

नरपति—बड़ी आफत है। किस चीज पर इनको बैठावेंगे!

दालान में एक बड़ी चौकी और खाट छोड़कर दूसरा कोई आसन नहीं है।

(पुलिस के साहब, डाक्टर, दारोगा और दो सिपाहियों का प्रवेश।)

पुलिस-साहब—तुमलोग वीरेन्द्र को जानते हो ?

नरपति—(बिलखकर) धर्मावतार ! वह मुझ अभागे का ही पुत्र है।

साहब—तुम्हारे लड़के को किसने, कब और क्यों मारा ? बता सकते हो ?

नरपति—सरकार, उस दिन मैं अपने गाँव भरतपुर में था। मेरे लड़के वीरेन्द्र के साथ यही आदमी था। (मँगरा को दिखाता है) उस घटना की पूरी जानकारी यही रखता है।

साहब—(मँगरा की ओर मुड़कर) तुम इस मुकदमे में क्या जानते हो ?

(मँगरा बयान करता है। पुलिस-साहब अपनी डायरी में दर्ज करते हैं)

साहब—मारपीट यहीं हुई ?

मँगरा—नहीं हुजूर, उस नदी की धारा के पास।

साहब—चलो, मै वह जगह देखना चाहता हूँ।

(सभी जाते हैं। नदी की धारा के समीप बालू को लहू से लाल पाते हैं)

साहब—नरपति, और कोई आदमी है जिसने मार-पीट देखी ?

नरपति—हाँ सरकार, एक स्त्री है, जिसका नाम 'ज्योत्स्ना'

है। वहाँ पानी भरने गई थी। उसी ने वीरेन्द्र की जान बचाई है।

साहब—ज्योत्स्ना यहाँ आ सकती है?

नरपति—मैं नहीं कह सकता। वह सोलह वर्ष की जवान कन्या है। उसका पिता धनी आदमी है। इकबाल-गिरि की प्रजा है। उसके पिता आर्य-समाजी और कांग्रेस के भक्त हैं। शायद ही उसका पिता उसे यहाँ आने दे।

साहब—अच्छा होता कि हमलोग उसी के घर चलते। पर वहाँ चलने से पहले तुम अपना खलिहान मुझे दिखाओ।

नरपति—जैसी आज्ञा।

[खलिहान देखकर सबका प्रस्थान]

पाँचवाँ दृश्य

[ज्योत्स्ना के पिता मृत्युंजय का गृह]

मृत्युंजय—इकबाल की नादिरशाही और झूठे व्यवहार को देख-सुनकर देह में आग लग जाती है। वीरेन्द्र पीटा गया, लूटा गया। उसके जीने की उम्मीद नहीं। तोभी, सुना है, इकबाल को गिरफ्तार करने जो सिपाही और चोकीदार रतनपुर से आये थे, वे इक-

वाल के चाँदी के टुकड़ों के वशीभूत हो गये! दु
इकबाल हमेशा मेरे पीछे पड़ा रहता है। वह ज्योत्स्
को अपनी स्त्री के द्वारा बुला-बुलाकर सिखाता
कि कह दो—वीरेन्द्र ने रतना को लाठियों से घायल
किया है। भला ज्योत्स्ना कब माननेवाली?

(पुलिस-साहब, दारोगा, डाक्टर, सिपाही, नरपति आदि का प्रवेश

साहब—आपका नाम मृत्युंजय है?

मृत्युंजय—जी हाँ।

साहब—मुझे खबर मिली है कि वीरेन्द्र की जान बचानेवाल
और सबसे पहले उसे सहायता पहुँचानेवाल
आपकी पुत्री 'ज्योत्स्ना' हैं। क्या आप उनको इस
मुकदमे में इजहार देने के लिए बुला सकते हैं?

मृत्युंजय—पीड़ितों की रक्षा करना, दुर्बलों को अत्याचारियों
के पंजे से छुड़ाना, असहायों की सहायता करना,
अपनी आन पर मर मिटना—ये ही तो हमारे
सिद्धान्त हैं। मेरी कन्या जो बात जानती है, उसे
कहने में वह कुछ भी संकोच न करेगी।

साहब—धन्यवाद।

(ज्योत्स्ना आकर सबको प्रणाम करती है)

साहब—आप वीरेन्द्र के मुकदमे के बारे में क्या जानती हैं?

ज्योत्स्ना—मैं गत गुरुवार को दस बजे दिन में जल भरने नदी

गई थी। वहाँ इकबाल-गिरि को भैरव, रतना, सूपना, धूपना और जुमना के साथ लठ लिये नदी की धारा के समीप खड़ा देखा। उन लोगों का डरावना चेहरा देख मेरा दिल दहल गया। मैं उनलोगों की नीयत जानने की इच्छा से वहीं बैठकर अपना पाँव धोने लगी। जान पड़ता था कि ये लोग किसी की ताक में लगे थे। इसी बीच दो आदमी करीब पचास बैलों को खदेड़ते हुए चले आ रहे थे। उन लोगों को देखकर इकबाल ने अट्टहास कर बैलों को रोक दिया। कुछ कहा-सुनी के बाद वीरेन्द्र पर लाठियाँ बरसने लगी। वीरेन्द्र का साथी भाग गया। कुछ देर के बाद चौकीदार के साथ वह फिर आया। वीरेन्द्र बालू पर गिरा पड़ा था। गिरि के आदमी बैलों को घर की ओर हाँक चुके थे। मुझसे रहा न गया। मैंने घायल वीरेन्द्र के समीप जाकर उसके सिर पर पानी देना शुरू किया। इतने में चौकीदार के साथ वीरेन्द्र का यह नौकर आया (उँगली से मँगरा को बताती है)। इसकी सहायता से लाश को मैं वृक्ष की छाया में ले गई। वहाँ अपने शरीर के कपड़े तथा वीरेन्द्र की धोती फाड़-फाड़कर जल से तर करके खून बहते हुए घावों पर रक्खा। तबतक चौकीदार

दो कहारों और एक दूसरे चौकीदार के साथ आया ये लोग लाश को खाट पर रखकर निशापुर-था में ले गये।

साहब—वीरेन्द्र के किन अंगों में अधिक चोट लगी थी ?

ज्योत्स्ना—हाथ और पाँव की हड्डियाँ निकल गई थीं। सिर में बड़ी गहरी चोट थी। कोई ऐसा अंग न था जिसमें चोट न लगी हो। लाठियों की आवाज ऐसी जान पड़ती थी मानों सुरखी कूटी जाती हो।

साहब—किसी और को भी वहाँ घायल देखा ?

ज्योत्स्ना—नहीं, वीरेन्द्र के सिवा किसी को चोट लगी ही नहीं।

साहब—ज्योत्स्ना, मैं तुम्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ। मुझे विश्वास न था कि तुम ऐसी निर्भीकता और सचाई से इस मुकदमे में सहायता करोगी। बेशक हमारे योरप की स्त्रियाँ बहादुरी और सहृदयता के लिए प्रसिद्ध हैं; पर आज हिन्दुस्तान के गाँवों में भी साहसी स्त्रियों को देखकर मै निहायत खुश हुआ।

ज्योत्स्ना—(लज्जा से) साहब, इसका श्रेय मेरे पूज्य पिताजी को है। ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों के अनुकूल चलनेवाले सभी लोग निर्भीक, सहृदय और साहसी होते हैं—कर्त्तव्य की कीमत वे ही समझते हैं। मैं तो एक साधारण बालिका हूँ।

साहब—मृत्युंजयबाबू, मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ।

मृत्युंजय—साहब, आपसे मेरा भी एक अनुरोध है। आपके दरबार में न्याय नहीं होने पाता; क्योंकि आपके अधिकांश कर्मचारी भ्रष्टचरित्र हैं। झूठ को सच और सच को झूठ करना उनके बाएँ हाथ का खेल है। आज ही इस गाँव में ऐसी कार्रवाई हुई है।

साहब—आप जो कहना चाहते हैं, कृपया जल्दी कहें। बारह बज रहा है। कचहरी में एक बजे पहुँचना जरूरी है।

मृत्युंजय—आज रत्नपुर से तीन सिपाही और चार चौकीदार गिरफ्तारी वारंट लेकर आये थे। उन बेईमानों ने घूस लेकर इकबालगिरि आदि को छोड़ दिया।

साहब—(अनसुनी करके) डाक्टर साहब, सिर और हाथों की चोट कैसी है ? किन हथियारों से इस प्रकार की चोट संभव है ?

डाक्टर—चोटें खौफनाक हैं। तीक्ष्ण धारवाले और कुंठित धारवाले शस्त्रों से मार पड़ी है।

साहब—ऐसा ?

डाक्टर—जी हाँ।

साहब—दारोगा, मेरे पास के सबूतों के आधार पर यह मुकदमा काबिल-चालान है। इन दो सिपाहियों को लेकर इकबाल और भैरव को तुरत गिरफ्तार कर रत्नपुर भेजो।

छठा दृश्य

[रत्नपुर-अस्पताल]

रतना— यह अस्पताल है कि नरक-कुंड। चारों ओर दुर्गन्ध और पीड़ितों की आह। नरक के इन कीड़ों को देखकर भागने की इच्छा होती है। पर यह भी करने में स्वच्छंद नहीं हूँ। इकबालगिरि की कृपा से मेरी यह दुर्दशा हुई। अभी और क्या बीतेगी, ईश्वर जानें। बुरों की संगति करने से ऐसा ही फल मिलता है। अपने पापी मालिक का मैं दाहिना हाथ था। तब भी मेरे ही हाथ-पाँव तोड़े गये। सिर भी मेरा ही फोड़ा गया—वीरेन्द्र को जेल भेजने के लिए! सुना है कि मजिस्ट्रेट और पुलिस-साहब वीरेन्द्र की मदद कर रहे हैं।

[भैरवगिरि का प्रवेश]

रतना—पा-लागन बाबा!

भैरव—मस्त रहो। कहो, तुम्हारी क्या हालत है?

रतना—क्या बताऊँ बाबा, छः दिनों के बाद आज उठ बैठा हूँ। घर की याद आ गई है। मालिक कहाँ और कैसे हैं?

भैरव—मत पूछो। उस नादान के फेर में पड़कर मैं भी चौपट

हुआ। वह इस वक्त जेल की हवा खा रहा है। आप गया, यजमानों को भी लेता गया!

रतना—यह क्या सुन रहा हूँ, बाबा! आप तो उनके प्रधान मन्त्री हैं। सभी अनर्थ आपकी सलाह से ही होते हैं। लाठी भाँजने में, दूसरों की इज्जत उतारने में, गाली देने में आप बे-जोड़ हैं। भला यह तो बताइये, मैंने क्या अपराध किया था कि मेरी यह दुर्दशा की गई?

भैरव—दारोगा के अष्टकौशल से तुमने शूर्पणखा की गति प्राप्त की। पर सुना है कि उस मरदूद को भी पुलिस-साहब ने 'ससपेंड' (Suspend) कर दिया है—निशापुर से हटाकर रत्नपुर के पुलिस-क्लब में रखा है। उसकी करतूत की जाँच खुफिया-पुलिस कर रही है।

रतना—बाबा, आप क्यों छूट गये और मालिक क्यों अभी तक हाजत में हैं?

भैरव—क्या कहूँ भाई, कल दो घंटे तक वकील हमलोगों को छुड़ाने के लिये बहस करते रहे। बड़ी कठिनाई से मजिस्ट्रेट ने हमलोगों को पाँच-पाँच सौ रुपये की जमानत पर छोड़ा है; पर मालिक को नहीं छोड़ा।

[एक संन्यासी का प्रवेश]

सन्यासी—इस जग में कोई किसी का नहीं है। सब-कुछ

माया का खेल है। जिसे हम पुत्र-कलत्र कहते हैं, वे भी उस लोक में काम नहीं आते। फिर क्यों चलते कुमार्ग पर, जब सन्मार्ग ही एक राह है। अपनाओ धर्म को, रहो दूर अधर्म से। करो संग न दुष्ट से, जब शांति ही अभीष्ट है।

अस्पताल का चपरासी—बाबा, यह अस्पताल है, धर्म-सभा नहीं। भीतर न घुसो। रोगियों को तकलीफ होगी।

संन्यासी—क्या टर-टर करता है! संन्यासियों और महात्माओं के लिये भी कहीं मनाही रहती है? तुम भी हमारे हो, रोगी भी हमारे हैं—डाक्टर भी और अस्पताल भी। जिस प्रकार हमने संसार छोड़ दिया, उसी प्रकार तुम भी यह अस्पताल छोड़ भागो। अरे यह रोग का भांडार और अशांति का नैहर है। मैं तो अशांति और रोग का औषध लिये फिरता हूँ।

चपरासी—व्यर्थ न बको बाबा। जब सब रोगों का औषध तुम्हारे ही पास है, तब यह अस्पताल व्यर्थ खोला गया। वह देखो, बड़े साहब आ रहे हैं। अब तुम्हारी खबर लेंगे।

संन्यासी—तुम्हारे बडे साहब के ऊपर मेरा साहब है। उसी का झंडा लिये फिरता हूँ।

सिविल सर्जन—(संन्यासी से) तुम्हीं सत्यानन्द हो ?

संन्यासी—जी हाँ।

सिविल सर्जन—जाओ, अपना काम करो।

सातवाँ दृश्य

[मृत्युंजय का घर]

ज्योत्स्ना—पिताजी, रजनी प्रति दिन यहाँ आकर आठ-आठ आँसू रोती है। अपने सौभाग्य की रक्षा के लिये विनीत और कातर स्वर से प्रार्थना करती है। उसकी आँखें सूज गई हैं। जब से इकबाल गिरफ्तार करके जेल में रखे गये हैं, उसने खाना-पीना छोड़ दिया है—सूखकर काँटा हो गई है। क्या करूँ, समझ में नहीं आता।

मृत्युंजय—ज्योत्स्ना, मै भली भाँति जानता हूँ कि रजनी एक सती स्त्री है। गिरिजी से सदा उसका मतभेद रहा। वह सदा उन्हें अच्छी राह पर लाने की कोशिश करती रही। उसी के पुण्य से गिरिजी अबतक सुख की नींद सो रहे थे। पर जो मरने पर उतारू है, उसे कौन बचा सकता है?

ज्योत्स्ना—पिताजी, रजनी मुझसे कहती है कि तुम इस मुकद्दमे में गवाही न दो। मेरी गवाही से गिरिजी का अनिष्ट अवश्यंभावी है। इन दिनों मामला गवाही पर ही

निर्भर करता है। रजनी मेरी माता की उम्र की है उसका विलाप मेरे कोमल कलेजे मे छेद कर देत है। मैं अपना कर्त्तव्य भूल रही हूँ। आज २४ मा है। २६ मार्च को मुकदमा खुलेगा।

मृत्युंजय—ज्योत्स्ना, तुमको पाँच वर्ष की उम्र से ही मैंने शि दी है। सदा अच्छी संगति में रखा है। तुम्हें देश देशान्तरों में भी ले गया। पर्याप्त अनुभव भी तुम प्राप्त कर लिया है। तुम्हीं बताओ कि ऐसे मौके प तुम्हें क्या करना चाहिये।

ज्योत्स्ना—पिताजी, यदि वीरेन्द्र की ओर से मैं गवाही नहीं देती, तो मुझे छोड़कर उसे इस गाँव में एक भी गवाह नहीं मिलेगा। समस्त ग्राम गिरिजी की सहायता करने के लिए अब तैयार है। जबतक वे गिरफ्तार न हुए थे, कुछ लोग उनकी शिकायत करते थे; पर उनके जेल में पड़ते ही सबकी सहानुभूति उनकी ओर हो गई है। इस मुकदमे में अगर गिरिजी छूट गये, तो वीरेन्द्र के लिए यह स्थान अति उष्ण प्रमाणित होगा।

मृत्युंजय—सच बात कहने पर यदि जगत् दुश्मन हो जाय, और उस बात के कहने से अपनी आत्मा को कष्ट न पहुँचे, तो मनुष्य को सत्य से कदापि विचलित नहीं

होना चाहिये। इस अभियोग में गिरिजी को यदि फाँसी की सजा होती, तो रजनी और उसके छोटे-छोटे बच्चों के खयाल से मैं तुम्हे गवाही देने से अवश्य रोकता। पर उनको अधिक-से-अधिक कुछ बरसों का दंड मिलेगा। दंड पाने पर संभवतः उनका सुधार हो जाय।

ज्योत्स्ना—मैने प्रेमचंद के 'सेवा-सदन' में पढ़ा है कि कृष्णचन्द्र-सदृश साधुचरित्र दंड पाने के पश्चात् मनुष्य से पशु हो गया। दंड पाने के पूर्व जो उदात्त गुण उसमें वर्त्तमान थे, जेल के दूषित वातावरण में पड़ कुंठित हो गये। शायद यही बात गिरिजी के प्रति लागू हो।

मृत्युंजय—पुस्तकीय ज्ञान और लौकिक ज्ञान में बहुत अन्तर है। किताबी ज्ञान व्यावहारिक जगत् के सामने हवा हो जाता है। प्रेमचंद उपन्यासकार थे। उन्होंने अपने पात्रों के चरित्र के विकास के लिए कृष्णचन्द्र को पशु के रूप में परिणत करना ही उचित समझा। तुम्हें बहुत-सी ऐसी भी पुस्तकें मिलेंगी जिनके पतित पात्र सुधर जाते हैं और जगत् के उपकार तथा लोक-सेवा में अपना जीवन अर्पित कर देते हैं। ऐसे पात्र तुम्हें संसार की पाठशाला में बहुत संख्या में मिलेंगे। तुमने देखा है और अनेक

समाचारपत्रों में पढ़ा भी होगा कि अकेले गांधी ने सहस्रों गिरे हुए मनुष्यों का उद्धार कर दिया है।

ज्योत्स्ना—पिताजी, क्षमा करें, महात्मा गांधी का यहाँ उल्लेख अप्रासंगिक है। मेरा तर्क है कि दुराचारी, व्यभिचारी, पापी, हत्यारे, चोर, डाकू और बे-ईमान ही अधिकतर जेल जाते हैं। उनके साथ भला आदमी भी यदि कुछ दिनों तक रहे तो उसकी बुद्धि बिगड़ जायगी। बुद्धिमानों को मैंने बहुधा कहते सुना है कि मनुष्य परिस्थिति या वातावरण का दास है।

मृत्युंजय—हाँ, यह सत्य है कि जेल में प्रायः वैसे ही लोग रहते हैं जो समाज या राष्ट्र के नियमों का उल्लघन करते हैं। पर इन दिनों एक दूसरी ही परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। हिन्दुस्तान में एक ऐसे आन्दोलन का सूत्रपात हुआ है कि १९२१ ई० से १९३६ ई० के बीच बड़े-बड़े सदाचारी और ज्ञानी मनुष्य भी अपने उग्र राष्ट्रीय विचारों के कारण जेल-यंत्रणा भोग रहे हैं। यदि इकबाल को ऐसे महापुरुषों की संगति नसीब हुई, तो उसके जीवन में बड़ा परिवर्त्तन हो जायगा।

ज्योत्स्ना—तब तो आपके कथन से यही निष्कर्ष निकलता है कि मै गवाही देकर वीरेन्द्र के पक्ष का समर्थन करूँ।

मृत्युंजय—न्याय और सत्य तो यही कहता है।

आठवाँ दृश्य

[सरकारी वकील का कमरा]

रायबहादुर मनोरंजन वर्मा—तुम इकबाल-गिरि के आदमी हो ? वे तो हमारे पुराने मवक्किल हैं। उनके मुकदमे की पैरवी के लिए मुझे कलक्टर साहब से आज्ञा लेनी पड़ेगी। मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हारे मालिक मुझे कितनी फीस देंगे।

भैरव—सरकार, इस समय मेरे स्वामी बड़े संकट में पड़े हैं। अब उनके हाथ में पैसे नहीं रह गये। वे ऋणग्रस्त हो गये हैं। उनकी कुछ जायदाद भी बिक गई। वे स्वयं जेल में हैं, जमानत पर भी नहीं छुटे। ऐसी स्थिति में लाचार होकर उनकी स्त्री ने पाँच सौ रुपये मायके से मँगाये हैं। रुपये का ब्योरा तो यही है। वे छूटें या न छूटें, पर आप जो उचित समझें—हुक्म दें।

रायबहादुर—एक सौ रुपये रोजाना से कम फीस मैं नहीं ले सकता। पुराना मवक्किल समझकर मैंने बहुत रियायत की है।

भैरव—हुजूर, जैसी मर्जी, कल ही तारीख है।

रा० ब०—दरखास्त, डाक्टर का सर्टिफिकेट, पुलिस की

रिपोर्ट, सबकी नकल के साथ सुबह साढे छः बजे मुझसे मिलो। मैं गिरिजी को जमानत पर छुड़ा लूँगा।

भैरव—सभी नकलें तैयार हैं। पुलिस की रिपोर्ट की नकल नहीं मिलती।

रा० ब०—पेशकार को दो-चार रुपये दे दो। आसानी से सादा कागज पर नकल मिल जायगी। उसी से काम सध जायगा।

नवाँ दृश्य

[रत्नपुर-अस्पताल]

वीरेन्द्र—मैंने जीवन में आजतक किसी को कष्ट नही पहुँचाया था। मै किसी से घृणा नही करता। पर उस दिन मुझे क्या हो गया कि मँगरा के कहने पर इकबाल के बैलों को फाटक देने के लिए उद्यत हो गया। नदी की धारा के समीप जब इकबाल खरी-खोटी सुनाने लगा, मैंने भी ज्यादती से काम लिया। मुझे तो कष्ट हुआ ही, मेरे कारण वृद्ध पिताजी की कैसी दुर्गति हो गई। उन्हें सुखी रखने के उद्देश्य से मैंने एम० ए० की पढ़ाई छोड़ दी, किसान का पेशा उठाया, साधारण गृहस्थ की भाँति जीवन

व्यतीत करने लगा, घोर परिश्रम करता, रात-रात-भर खेती की रक्षा में तत्पर रहता, गाँववालों की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। पर सब गुड़ गोबर हो गया!

[नरपति का हाथ थामे हुए मँगरा का प्रवेश]

नरपति—मँगरा, बाबू किधर रहते हैं?

वीरेन्द्र—आइये, पिताजी—(पिता के चरणों पर सिर टेकता है)

नरपति—आयुष्मान् हो। (वीरेन्द्र के हाथों को चूमता है)

वीरेन्द्र—पिताजी, मैंने आपको बुढ़ापे में असह्य कष्ट दिया। भरतपुर की जायदाद मेरे जीवननिर्वाह के लिए पर्याप्त थी। पर निन्नानवे के फेर में पड़कर मेरी यह दुर्दशा हो गई।

नरपति—बेटा, तुम बच गये, यही मेरे लिए स्वर्ग का राज्य समझो। तुम्हारे बिना पृथ्वी की सारी सम्पत्ति मेरे लिए कौड़ी के मोल की नहीं। तुम्हें मालूम है कि कल ही मुकदमे की सुनवाई होगी!

वीरेन्द्र—हाँ पिताजी, पुलिस के साहब का अर्दली आज कह गया है कि कल मुझे कचहरी में दस बजे हाजिर होना चाहिये।

नरपति—पुलिस के साहब बड़े दयालु हैं। उन्होंने मुझे बुलाकर कहा है कि इस मुकदमे में मुझे वकील रखने की

आवश्यकता नहीं है—कोर्ट-इन्स्पेक्टर मुकदमे की पैरवी करेंगे। पर मैंने सुना है कि इकवाल की तरफ से सरकारी वकील रायबहादुर मनोरंजन काम करेंगे। ऐसी स्थिति में मैं रायसाहब शरच्चन्द्र सेन को रखना चाहता हूँ। फौजदारी के मुकदमे में शरत् बाबू ही मनोरंजन बाबू का मुकाबला कर सकते हैं। तुम्हारी क्या राय है?

वीरेन्द्र—वकील की कोई आवश्यकता नहीं है। ईश्वर ही कर्त्ता, धर्त्ता और संहर्त्ता है। सबके कार्यों का लेखा लेनेवाला वही है। मनुष्य तो एक निमित्तमात्र है। हमलोग उसी पर भरोसा रखें।

नरपति—यही फिलासफी तुम्हारे विनाश का कारण हुई। मेरे कहे अनुसार अगर तुम एक-दो पहलवान अपने साथ रखते तो आज मुझे रत्नपुर की खाक नहीं छाननी पड़ती—आज अनाथ-सा मैं रोता नहीं फिरता।

वीरेन्द्र—पिताजी, जगत् परिवर्त्तनशील है। कोई भी मनुष्य अजर-अमर नहीं है। सबकी मृत्यु निश्चित है। इकबाल तो निमित्त कारण हुआ। उसके पापों का प्याला भर गया है। उसे अपने कुत्सित कर्मों का फल भोगना ही पड़ेगा। पर मैं क्यों उससे घृणा करूँ—

मैं क्यों उससे वैर बढ़ाऊँ? वैर के द्वारा वैर का नाश संभव नहीं। घृणा के द्वारा प्रेम पर विजय नहीं हो सकती। प्रेम के द्वारा ही मनुष्य ईर्ष्या, घृणा और शत्रुता का दमन कर सकते हैं। अतः मेरी राय है कि मुकदमे को अपना स्वतंत्र मार्ग ग्रहण करने दें।

[अस्पताल की विश्रामवाली घंटी बजती है। मँगरा के साथ नरपति का प्रस्थान]

दसवाँ दृश्य

[जेल का एक कमरा]

इकबाल—सवेरा कब न हुआ, आठ बज रहा है, अभी तक भैरव वकील के यहाँ से लौटकर न आया। 'रतना' चाल चलेगा, यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था। इसमें रतना का दोष नहीं। यह मेरे दुर्भाग्य का खेल है। उसे फोड़ने के लिए पुलिस प्रलोभन दे रही है। लालच में पड़कर मनुष्य क्या नहीं कर सकता! मेरा विश्वास है कि रतना मेरे सामने दूसरी बात नहीं कर सकता। उसकी रग-रग में मेरा नमक पैवस्त है। हो न हो, भैरव किसी गुरुतर कार्य ही में लगा होगा, नहीं तो इतना विलम्ब न होता।

[जेल के एक सिपाही का प्रवेश]

सिपाही—इकबाल, जेल के फाटक पर तुम्हारा एक आदमी

खड़ा है, तुमसे दो बातें करना चाहता है। शीघ्रता करो। जेल-सुपरिंटेंडेंट के आने का समय हो रहा है। वार्डर साहब अपने दायित्व पर तुम्हें भेंट करा दे रहे हैं।

इकबाल—(हाथ जोड़कर) आपलोगों की बड़ी कृपा है।

सिपाही—कृपा की कोई बात नहीं। पैसे की करामात है। खुद जेलर साहब ही तुम्हारा सत्कार करते हैं। जिसकी गाँठ में पैसे हैं, उसके लिए नरक भी स्वर्ग है।

इकबाल—(फाटक के सामने जाकर) भैरव भाई, तुमने बड़ी देर की। वकील ने क्या राय दी ? रतना से मिले या नहीं ? क्या इस नरक से मेरा उद्धार संभव नहीं है ?

भैरव—धीरज धरें। अति शीघ्र आप मुक्त हो जायँगे। वकील ने कागज देखकर कहा कि मुकदमे में कुछ दम नहीं है, यह दो दिनों के अन्दर समाप्त हो जायगा। मुद्दई के दो गवाह हैं—एक ज्योत्स्ना, दूसरा मँगरा। हाँ, एक गवाह बहुत जबरदस्त और खौफनाक है—अस्पताल का डाक्टर !

इकबाल—तुमने कहा था कि रतना को पुलिस ने मिला लिया है—वह हमलोगों के विरुद्ध गवाही देगा। यह बात तुमने वकील से कही ?

भैरव—मैंने सब कह दिया है। उन्होंने कहा कि रतना यदि विरुद्ध गवाही देगा, तो उससे शत्रुता प्रमाणित करेंगे। रतना की माँ सागरिका आ गई है। उसने रतना को बहुत समझाया है। वह कहती है कि रतना खिलाफ गवाही न देगा।

—

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[न्याय-भवन में मजिस्ट्रेट, पेशकार, अर्दली, दो पुलिस-कांस्टेबिल, कोर्ट-इंस्पेक्टर, रायबहादुर मनोरंजन वर्मा]

मजिस्ट्रेट—अर्दली, मुद्दई और मुद्दालेह को पुकारो।

अर्दली—नरपति मुद्दई हाजिर है। इकबालगिरि, भैरव, रतना, धूपना, झुमना और सूपना मुद्दालेह हाजिर हैं। (दो-तीन बार आवाज देता है)

मजिस्ट्रेट—(मुद्दई और मुद्दालेह की ओर देखकर) तुमलोग अपना-अपना वकील बुला लो। मैं बहस सुनूँगा।

मनोरंजन वर्मा—हुजूर, मैं इकबालगिरि की ओर से इस मुकदमे में बहस करूँगा। मै सरकारी वकील हूँ। इसलिए जिले के कलक्टर साहब से आज्ञा ले चुका हूँ।

मजिस्ट्रेट—कोर्ट-इंस्पेक्टर साहब, आप मुद्दई की ओर से बहस करें।

कोर्ट इंस्पेक्टर—हुजूर, यह मुकदमा बड़ा जटिल और रोमांचकारी है। इसमें बारह गवाह हैं। दो चौकीदार, दो कहार, नरपति, दारोगा और सिपाही नाममात्र के गवाह हैं। वीरेन्द्र, ज्योत्स्ना, मँगरा, डाक्टर, पुलिस-सुपरिंटेंडेंट और रतना प्रधान गवाह हैं। मुदई वीरेन्द्र एक शिक्षित और संपन्न नवयुवक जमीन्दार है। इसने चौदह हजार में इकबाल से प्रपंचपुर में चार वर्ष पूर्व चार आने हिस्से की जमींदारी खरीदी। कबाला-दस्तावेज हुजूर में पेश है।

[मजिस्ट्रेट कबाला-दस्तावेज उलट-पुलटकर देखता है और उसपर अपना हस्ताक्षर करता है]

कोर्ट-इन्स्पेक्टर—इसके सिवा इकबाल की शेष बारह आने जमींदारी को, चार आने मासिक सैकड़े व्याज पर, छः हजार देकर मकफूल करा लिया है। यह दस्तावेज भी हुजूर में पेश है। नरपति की गवाही से यह बात विदित है कि वीरेन्द्र उसका एकलौता बेटा है। भरतपुर में उसकी काफी जायदाद है। इकबाल की गिड़गिड़ाहट से पसीजकर उसने इकबाल को इतने रुपये दिये। इन रुपयों के न मिलने से इकबाल की सारी जायदाद अबतक खतम हो जाती। मँगरा के

बयान से यह जाहिर है कि जब से नरपति ने जमींदारी खरीदी तब से आज तक इकबाल ने इनलोगों को सुख की नींद सोने नहीं दिया। इनको तंग करना, खेती चरा देना, इनके आदमियों को पिटवा देना, इन्हें बे-इज्जत करना इकबाल ने अपना कर्त्तव्य समझ रखा है। वीरेंद्र की गवाही से प्रकट होता है कि नरपति की वृद्धावस्था और इकबाल की ज्यादती देख वीरेंद्र पढ़ना छोड़ प्रपंचपुर की जमींदारी की देखरेख में लग गया। जिस सहिष्णुता, धैर्य और कौशल से उसने काम लिया वह ज्योत्स्ना, मँगरा और रतना के इजहार से प्रकट होगा। इकबाल इतना उपद्रवी है कि इसने वीरेन्द्र को तबाह-हाल कर दिया। इकबाल के विश्वस्त नौकर रतना की गवाही से प्रमाणित हुआ है कि इकबाल ने वीरेन्द्र का खलिहान लुटवा लिया है। वीरेन्द्र जब मँगरा के साथ इकबाल के बैलों को खलिहान से निकाल मवेशी-खाना ले जाने लगा तब इकबाल ने इन पाँच आदमियों के साथ, जो इस कठघरे में मौजूद हैं, वीरेन्द्र पर घातक आक्रमण किया। कैसी निर्दयता से वीरेन्द्र पीटा गया, इसका अनुमान ज्योत्स्ना के बयान तथा डाक्टर की रिपोर्ट से हुजूर कर सकते

है। पुलिस-साहब का इजहार भी इस दिशा में बहुत सहायक है। मँगरा और चौकीदार के बयान से साफ जाहिर है कि इकबाल ने सारे गाँव में ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई भी आदमी वीरेन्द्र की लाश उठाकर थाने में न ले जाय। इकबाल ने रतना का सिर फोड़, उसे अस्पताल में दाखिल करा, उसकी ओर से अदालत में वीरेन्द्र के विरुद्ध कार्रवाई की है। किस भाँति दारोगा ने डाक्टर को प्रलोभन दिया, वह डाक्टर के बयान से मालूम है। दारोगा 'ससपेंड' है। उसे दो वर्ष का कठिन कारावास मिला है। फैसले की नकल हुजूर के सामने दाखिल है। इकबाल और उसके आदमियों पर जो जुर्म साबित हुए हैं वे तीन भागों में विभक्त किये जाते हैं—खलिहान लूटना, मवेशियों को जबरदस्ती छुड़ा लेना, तेज तथा भोथर हथियार से घातक चोट पहुँचाना। अतः हमारी प्रार्थना है कि भारतीय दंडविधान की दफा ३७९, ३२६ और २४ के अनुसार इकबाल और भैरव को दंड दिया जाय। रतना को क्षमाप्रदान हो। शेष तीन आदमियों को अल्प दंड दिया जाय।

मजिस्ट्रेट—रायबहादुर मनोरंजन वर्मा, आपको मुद्दालेह की ओर से क्या कहना है?

मनोरंजन वर्मा—महोदय, हुजूर को मालूम है कि हमारा मवकिल इकबाल एक प्रतिष्ठित रईस है। वह निशापुर-अस्पताल की कार्यकारिणी समिति का सदस्य है, स्थानीय स्कूल के संचालकों में से एक है, ज़िला-बोर्ड का भी मेम्बर है। सरकारी कामों के लिए हमेशा वह चन्दा देता है। उसने वीरेन्द्र से ऋण अवश्य लिया; पर मुफ्त नहीं, बदले में अपनी पैतृक सम्पत्ति का एक बड़ा हिस्सा वीरेन्द्र को लिख दिया। उसकी नीयत इतनी साफ है कि बारह आने जमींदारी थोड़े रुपये पर मकफूल कर दी है। पैसे के लोभ में पड़कर रतना ने खिलाफ गवाही दी है। कभी यह संभव नहीं कि एक आदमी अपना सिर खुशी से फोड़ने देगा। रतना ने चाँदी के टुकड़ों पर अपनेको बेच डाला है। यह कभी विश्वास के योग्य नहीं कि छः आदमियों की लाठियों की चोट एक ही समय में वीरेन्द्र-सा दुर्बल मनुष्य सह सकेगा। ज्योत्स्ना चश्मदीद गवाह है; पर उसका पिता इकबाल का जानी दुश्मन है। मृत्युंजय और इकबाल में कई मुकदमे हो चुके हैं, जिनके कागजों की नकल दाखिल है। मारपीट हुई, पर दो ही आदमियों के बीच—वीरेन्द्र और रतना।

दोनों घायल भी हुए। डाक्टर की रिपोर्ट और उनकी गवाही से स्पष्ट है कि भैरव एक निर्दोष व्यक्ति है, व्यर्थ घसीटा गया है। खलिहान से गल्ला लुटवाने का जुर्म सरासर झूठ है, इकबाल के घर से एक दाना भी बरामद न हुआ। इसलिए हमारी प्रार्थना है कि फौजदारी की दफा २५८ के अनुसार मेरे मवक्किल रिहा किये जायँ।

मजिस्ट्रेट—मैं आपलोगों की बहस सुन चुका। सब गवाहों के बयान मेरे सामने हैं। कल चार बजे फैसला सुनाया जायगा।

दूसरा दृश्य

[प्रपंचपुर में मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई रजनी]

रजनी—सागरिका! रत्नपुर से कोई समाचार आया? मेरा अन्तिम समय आ गया। शरीर नितान्त निर्बल हो गया। हृदय का तार टूट गया। देह में मर्मभेदी पीड़ा है। सिर में भयानक दर्द। पेट में दाह। कल शाम तक मैं माँ के पास पहुँच जाऊँगी। यदि वे आवें तो कहना कि रजनी के वही सर्वस्व थे। फिर वहाँ उनसे मिलूँगी।

सागरिका—स्वामिनी! निराश न हों। धीरज धरें। आपका

पातिव्रत-धर्म ही मालिक की रक्षा करेगा। आपकी अवस्था देखकर ही मैंने अपने पुत्र रतना के विरुद्ध गवाही दी। सरकारी वकील को मैंने कहते सुना है कि मालिक का बाल भी बाँका न होगा। यदि सजा भी हो जायगी, तो सरकारी वकील ने ऊपर अपील करने की राय दी है। वहाँ से मालिक जरूर रिहाई पावेंगे।

रजनी—सागरिका! तू मुझे केवल आश्वासन देती है। मेरे स्वामी का छुटकारा पाना कभी संभव नहीं। उनके पाप का घड़ा भर गया। उन्होंने एक निर्दोष मनुष्य को असह्य कष्ट पहुँचाया है। उसका फल उन्हें और उनके बच्चों को मिले विना नहीं रहेगा। एक शक्ति है, जो क्षण-क्षण हमारे सभी कार्यों का लेखा लेती रहती है। वह स्वयं अदृश्य है, पर हमारे कार्य उसके लिए अदृश्य नहीं हैं। अन्याय और अत्याचार के द्वारा अधिक दिन तक जगत् में कोई भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। पतिदेव के संपर्क से दारोगा, सिपाही, भैरव आदि सभी बला में फँस गये। मेरी एक ही इच्छा मन में रह गई। अंत समय उन्हे न देख सकी। मेरा अंतिम संस्कार उनके हाथों न हो सकेगा! (मूर्च्छित हो जाती है)

सागरिका—हाय ! यह क्या हो गया ! क्या करूँ, कुछ सूझ नहीं पड़ता । (इधर-उधर व्याकुल दौड़ती है)

[भैरव का प्रवेश]

भैरव—सागरिका ! इतनी व्याकुल क्यों है ?

साग०—बाबा, स्वामिनी बड़ी देर से मूर्च्छित हैं । दो-तीन दिनों से ज्वर बड़े वेग से आ रहा है । कभी कभी अंटसंट बोलने लगती हैं । अभी बहुत बकझक कर बेहोश हो गई हैं ।

भैरव—(दौड़कर जाता है) सागरिका, जरा स्वामिनी की नाड़ी तो पकड़कर देख ।

साग०—बाबा, नाड़ी नहीं चल रही है । देखिये न, आँखें उलट गई हैं !

भैरव—(नाड़ी पकड़कर) ओफ ! पार हो गईं । (रोने लगता है)

तीसरा दृश्य

[भैरव का घर]

भैरव—(अपनी पत्नी से) प्रिये, कल फैसला सुनाया जायगा । यह निश्चय है कि मजिस्ट्रेट हमलोगों को नहीं छोड़ेगा । अतः अभी तुमको सान्त्वना देने के लिए यहाँ आया हूँ । लो, इन गहनों को समय-समय पर बेचकर पेट चलाना । ईश्वर चाहेगा तो पुनः लौट-कर आने पर तुमलोगों का पालन-पोषण करूँगा ।

स्त्री—देव ! ये गहने कैसे ? ये सोने के गहने कहाँ और कैसे तुम्हारे हाथ लगे ! अरे तुमने कहीं चोरी तो नहीं की ?

भैरव—घबराने की कोई बात नहीं। गिरजी की पत्नी आज चल बसी। उनके घर में दो छोटे-छोटे लड़कों और साग-रिका को छोड़ इस समय कोई नहीं है। जिस समय सभी रो-कलप रहे थे, मैंने कुंजी से पेटी खोलकर इन्हें निकाल लिये। अब उस घर में अन्न छोड कुछ है नहीं। ढूँढ़ने से दो अँगूठियाँ, दो अनन्त, दो कुंडल और भी मिले हैं। ये गहने दोनों लड़कों के हैं।

स्त्री—छी-छी ! तुमने यह क्या किया ? बच्चे सबके होते हैं। लो, उन्हें ये गहने लौटाते जाना; मुझे इनकी कोई जरूरत नहीं। मैं भीख माँगकर या कूट-पीसकर गुजर कर लूँगी।

भैरव—मूर्ख ! अभी पेट भर रहा है, खोजना नहीं पड़ता, तभी ऐसी बातें कर रही है। मेरी अनुपस्थिति में जब बच्चे रोटी के एक टुकड़े के लिए तरसने लगेंगे, तब इन गहनों की उपयोगिता समझेगी। देख, मैं चला। चार कोस दूर रत्नपुर-कचहरी में दस बजे हाजिर होना है।

स्त्री—नाथ, इन गहनों को उन असहाय बच्चों को लौटा दो। गिरिजी ने बहुत-कुछ दिया है। आज तक वही हम-

लोगों का पालन कर रहे थे। इतना शीघ्र तुम उनके उपकारों को भूल गये ?

भैरव—क्या दिया है उसने ? दिन-रात तावेदारी करता था, तब वर्ष में बारह मन धान और पाँच मन गेहूँ देता था। उसी दुष्ट ने तो मेरा सर्वनाश किया है।

स्त्री—जो हो, मैं इन गहनों को कभी काम में नहीं ला सकती। अपने साथ लेते जाओ। (फेंक देती है)

भैरव—अच्छा, मैं इन्हें तो सागरिका के सुपुर्द कर दूँगा; पर तुमलोगों का भरण-पोषण कैसे होगा—यह बताओ ?

स्त्री—नाथ, आप इसकी चिन्ता न करें। वही जो लाल-लाल उगा आता है, इन बच्चों का कल्याण करेगा। (पति के पाँवों पर गिरकर रोने लगती है)

भैरव—प्रभा ! मै धन्य हूँ कि तुझ-सी देवी मेरे घर को भूषित करती है। मैं अपने कर्मों पर लज्जित हूँ। अवश्य ईश्वर तेरी रक्षा करेगा। (प्रस्थान)

प्रभा—(अश्रुपूर्ण नेत्रों से, जाते हुए पति को देखती हुई) मेरा पति बुरा नहीं है। वह झक्की है। आवेश में आकर बुरा कर्म कर बैठता है। हे ईश्वर ! मेरे सौभाग्य की रक्षा कर। सद्बुद्धि दे मेरे पतिदेव को।

चौथा दृश्य

[जेलखाना]

दारोगा—मै विनष्ट हो गया। दो वर्ष की सजा और एक बड़े परिवार के पालन की चिन्ता मुझे व्यग्र कर रही है। यहाँ से निकलने पर भी चैन नहीं। नौकरी गई। सम्मान गया। मुँह में कालिख लगी। मैं अब कहीं का न रहा!

इकबाल—सलाम दारोगाजी, आप कैसे यहाँ चले आये?

दारोगा—अपनी करनी से। आपके मुकद्मे मे क्या हुआ?

इकबाल—क्या बताऊँ? जो होना होगा, होगा ही। दुःख केवल यही है कि वीरेन्द्र अभीतक जीता है।

दारोगा—अरे निर्दय, अब भी सँभल। ईश्वर का ध्यान कर। तेरे कारण कितने आदमी जबह हो रहे हैं।

इकबाल—दारोगाजी, इस राज्य में न्याय नहीं है। बड़े से छोटे तक सभी घूसखोर हैं। वीरेन्द्र ने मजिस्ट्रेट, पुलिस-साहब, डाक्टर, सबको रुपये से वश में कर लिया है—यहाँ तक कि मेरे विश्वासी नौकर रतना को भी!

दारोगा—चुप रहो, तुम्हारी मति मारी गई है। ये सभी, जिनकी तुम शिकायत कर रहे हो, ईमानदार और कर्त्तव्य-परायण हैं। केवल तुम और हम भ्रष्ट-चरित्र हैं, इसीलिए हमलोग सबको अपनी ही मलिन दृष्टि से देखते हैं। मै साधु जीवन का मूल्य अब समझता हूँ। जबतक मैं अपना आचरण पवित्र रख उचित रीति से कर्त्तव्य-पालन करता रहा, तबतक सभी मुझे आदर और प्रेम की दृष्टि से देखते थे। कर्त्तव्यों की अवहेलना करते ही विपत्ति के पर्वत टूट पड़े। मुझे तो हर्ष है कि अपराधों के लिए मुझे यथोचित दंड मिला है। मैने पीड़ित मनुष्यों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा, धन का सत्कार किया और पाप को छिपाने की चेष्टा की। इसका फल भोगना आवश्यक है। ईश्वर ने दंड के रूप में मुझे चेतावनी दी है—आत्म-सुधार के लिए अवसर दिया है। ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि यह जेल मेरे लिए उपासना और तपस्या का स्थान प्रमाणित हो।

(दो वार्डरों का प्रवेश)

वार्डर—चलो अपने-अपने कमरे में।

पाप के कारण मेरी स्त्री चल बसी? रतना ने कौन पुण्य किया कि वह दंड से मुक्त हो गया? संसार का रहस्य समझ में नहीं आता।

[नरपति का प्रवेश]

वीरेन्द्र—प्रणाम पिताजी। (चरणों पर गिरता है)

नरपति—चिरंजीव! चिरजीव! बेटा, तुम्हारा स्वास्थ्य बिगड़ा चला जाता है। इसपर थोड़ा ध्यान दो। जब कभी तुम्हें देखता हूँ, चिन्ताग्रस्त पाता हूँ। मैं अब वृद्ध हो गया। तुम्हें कोई संतान नहीं। पुत्रवधू भी चल बसी। तुम्हारे विवाह के लिए रोज लोग आकर धूम मचाते हैं। समझ में नहीं आता, उन्हें क्या उत्तर दूँ। तुम कान-पूँछ डुलाते ही नहीं!

वीरेन्द्र—पिताजी, विवाह ही जीवन का ध्येय नहीं है। वैवाहिक जीवन तो झंझट और कष्टों का घर है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हुए जगत् के कल्याण में अपने जीवन का उत्सर्ग करता है, वही तो अमर है, वही देवता है, उसी का वंश सतत अनश्वर है। वह भावी संतति के लिए आदर्श के रूप में स्वयं वर्त्तमान रहता है।

नरपति—प्रिय पुत्र, तुम्हारा कहना सर्वथा सत्य नहीं। सृष्टि के विकास के लिए विवाह एक प्रधान साधन है।

पशु-पक्षी भी इस पवित्र सम्बन्ध का महत्त्व समझते हैं। इसके अभाव में सृष्टि की गति रुक जायगी।

वीरेन्द्र—पिताजी, आपका कहना कुछ अंश में ठीक है। किन्तु खाना-पीना, धन बटोरना और बच्चा पैदा करना ही यदि मानव-जीवन का लक्ष्य हो, तो मनुष्य और पशु में बहुत कम अंतर रह जाता है। विश्व के अन्य प्राणियों से मनुष्य बहुत बड़ा है। संसार की सभ्यता उसी की विचार-शक्ति की उपज है। अनेक अद्भुत आविष्कार उसी के मस्तिष्क के प्रसाद हैं। उसी में प्रकृत सौन्दर्य की अनुभूति की वास्तविक शक्ति है। प्राणिमात्र के सुख-सन्तोष की वृद्धि के लिए प्रयत्न करना और विचारहीन व्यक्तियों के सामने ऊँचा आदर्श रखना ही उसके जीवन के कार्य हैं। जिसके हृदय में प्रेम और त्याग की पुनीत भावनाओं की धारा प्रवाहित होती है, वह केवल एक स्त्री या छोटे परिवार का पति होना पसंद न करेगा। वह तो मानव-जाति के विशाल परिवार के कुलपति का पद ग्रहण करेगा—भूले-भटके मनुष्यों के दल का गड़ेरिया होगा। अतः आप अब मुझे विवाह करने के लिए बाध्य न करें। मैं स्वच्छंद रह भरतपुर और प्रपंचपुर की जनता की सेवा करना

चाहता हूँ। मैं उन्हीं को अपना परिवार समझ उनके कल्याण में अपना जीवन व्यतीत करूँगा।

[एक चपरासी का प्रवेश]

चपरासी—वीरेन्द्र बाबू का कौन मकान है ?

वीरेन्द्र—यही तो है। क्या काम है ?

च०—एक नोटिस तामिल कराना है। वे कहाँ हैं ?

वीरेन्द्र—मै ही तो हूँ।

च०—आपके पीछे मैं हैरान हो गया। प्रपंचपुर गया। वहाँ से यहाँ आया। यह नोटिस लीजिये और दस्तूरी दीजिये।

वीरेन्द्र—तलब तो आप पाते ही हैं। फिर दस्तूरी कैसी ?

च०—लगे आईन छाँटने ! दिन-रात हमलोगों से ही काम पड़ता है। ऐसे ही कानूनियों का काम बिगड़ता है।

वीरेन्द्र—आप खफा न हों। जहाँ तक मेरी जानकारी है, आपलोग जरूरत से ज्यादा पार्टी को तंग करते हैं। जो कोर्ट की शरण केवल न्याय की आशा से लेता है वह तो हवा खाने गया ! याद रहे, जो अपने कर्त्तव्य के महत्त्व को नहीं समझता, वह मनुष्य कहलाने योग्य नहीं।

च०—समझ गया। फजूल बात करने से क्या फायदा। आप दस्तखत कीजिये। कहीं बालू पेरने से भी तेल निकलता है !

वीरेन्द्र—भाई, आप नाराज न हों। एक-दो रुपये के लिए मैं भागता नहीं। पर रुपये के लोभ में पड़कर झूठ का सच और सच का झूठ जो आपलोग करते हैं, इससे क्या आपको शांति मिलती है?

च०—सच तो यह है कि आठ-दस रुपये महीने से एक बड़े परिवार का पोषण संभव नहीं। इसलिए ऐसा करना ही पड़ता है। अच्छा, दस्तखत करें, मै चलता हूँ।

वीरेन्द्र—(ध्यान से नोटिस पढ़ता है) इकबाल की प्रपंचपुर की बारह आने जमीन्दारी भिखारी सिंह ने चार हजार रुपये के लिए नीलाम पर चढ़ाई है। इस जमीन पर छ हजार वीरेन्द्र का कर्ज है। इसलिए नोटिस दी जाती है कि १५ दिसम्बर १६३७ को हाजिर होकर अपना रुपया ले लो या नीलाम खरीदकर भिखारी सिंह के रुपये चुका दो। (चपरासी से) इसमें क्या करना चाहिये?

चपरासी—(हँसकर) नीलाम खरीदने ही में कल्याण है। इन दिनों रुपये की कमी है। दूसरा कोई नीलाम बोलेगा नहीं। चाहे आप खरीदें या भिखारी सिंह। आपने पहले भी कुछ जमींदारी उस गाँव में खरीदी है। अतः शिकार को हाथ से जाने देना आपके लिए ठीक नहीं है।

सातवाँ दृश्य

[प्रपंचपुर]

मृत्युंजय—ज्योत्स्ना विवाह-योग्य हो गई है। कई जगह से संवाद आ रहे हैं। पर यह शादी करने के लिए राजी नहीं होती। इसे मैं कैसे समझाऊँ ? इसकी माँ पंद्रह वर्ष पूर्व ही चल बसी। वह रहती तो इसे राह पर लाती। अब मै ही इसे समझाऊँगा। ज्योत्स्ना ! ज्योत्स्ना !

ज्योत्स्ना—(प्रवेश करके) पिताजी, क्या आज्ञा है ? आपके स्नान के लिए जल गर्म कर रही थी। भोजन तैयार है।

मृत्युंजय—बेटी, मैं अब बूढ़ा हो चला। तू ही मेरी इकलौती संतान है। कई जगह से कुटुम्ब आते हैं। उन्हें क्या उत्तर दूँ ?

ज्योत्स्ना—इसका क्या आशय ?

मृ०—तुम्हारा संसार-प्रवेश हो जाता तो मैं—

ज्यो०—संसार में नहीं, तो मैं कहाँ हूँ ? पिता की सेवा कर रही हूँ, पड़ोसियों को सहायता पहुँचाती हूँ, पीड़ितों को अपने औषधालय से दवा देती हूँ, अनाथों को आश्रय देती हूँ। क्या ये सब संसार के कार्य नहीं हैं ?

मृ०—हाँ, पर इनके अलावा और भी तो हैं।

ज्यो०—वे कौन-से हैं!

मृ०—तरुणी कन्या की रक्षा के लिए एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है, जो उसके सुख को अपना सुख समझे, जो उसके सहयोग से गृहस्थी सँभाले, जो उसकी सहायता से वंश की वृद्धि करे, जो नर-जीवन को देवत्व प्रदान कर भूतल को स्वर्ग बना दे।

ज्यो०—ऐसे पुरुष कहाँ हैं, पिताजी! वही इकबाल, जिसपर रजनी ने सर्वस्व निछावर कर दिया था और अन्त में अपने जीवन का बलिदान करना पड़ा! इसी गाँव में ऐसे-ऐसे भयानक नर-पशु हैं जो स्त्रियों को पैर की जूती और संतानोत्पत्ति की मशीन समझते हैं। उन्हें स्त्रियों के सताने ही में सुख मिलता है। कुछ स्त्रियाँ भी ऐसी हैं जो अपने पति को घृणा की दृष्टि से देखती हैं। शायद ही कोई घर है जहाँ दाम्पत्य जीवन सुख-शांति से बीतता है। ऐसे जीवन में सुख कहाँ? मै आपकी सेवा और दूसरों की सहायता में जो आनंद की अनुभूति पाती हूँ, वह स्वर्ग-लोक के निवासियों को भी दुर्लभ है।

मृ०—मैं अब कितने दिनों का मेहमान हूँ? मेरे मरने पर तो तुझे पितृप्रेम को दूसरी ओर प्रवर्त्तित करना ही पड़ेगा।

ज्यो०—पिताजी, आप आशीर्वाद दें कि मैं पितृभक्ति को विश्वपिता की भक्ति में परिणत कर सकूँ, गृह-सेवा को विश्व-सेवा में बदल सकूँ। संघमित्रा, जोन, नाइटिंगल आदि भी तो अविवाहिता कन्याएँ थीं; जिन्होंने विश्व-कल्याण में अपने जीवन को अर्पित कर स्त्री-जाति का सिर ऊँचा कर दिया।

आठवाँ दृश्य

[रत्नपुर-कचहरी]

शम्भुगिरि—हाय! सर्वनाश हुआ! इकबाल जेल में पड़े हैं—बीमार! यहाँ उनकी सारी जमींदारी नीलाम हो गई। उसी—हृदयहीन वीरेन्द्र ने नीलाम लिया है। अब ये दो बच्चे कैसे जीयेंगे। कितना रोया—गिड़गिड़ाया, हाकिम ने कान न दिया। हा भगवन्! इन नातियों का गुजर कैसे होगा? पास रुपये भी नहीं जो इन महाजनों को लौटा दूँ। जो कुछ था, इकबाल के मुकदमे में लगा दिया। अब तो अपना भी ठिकाना न रहा। इन बिलखते हुए असहाय बच्चों को कैसे ढाढ़स दूँ!

वीरेन्द्र—(समीप जाकर) बाबा, आप कौन हैं जो इस प्रकार कलप रहे हैं?

शम्भु०—मैं अपने इन नातियों की दयनीय दशा पर भाग्य को कोस रहा हूँ।

वीरेन्द्र—ये आपके नाती तो मेरे पूर्व-परिचित हैं—इकबाल बाबा के पुत्र हैं।

शम्भु०—और तुम कौन हो भाई!

वीरेन्द्र—वीरेन्द्र नाम का एक मानव-जाति का सेवक!

शम्भु०—(दूर हटकर मुँह फेर लेता है) यह तो वही वीरेन्द्र है जिसने मेरे दामाद को जेल दिलवाया, पुत्री का विनाश किया और नातियों का सर्वनाश। देखो न, कितनी चिकनी-चुपड़ी बातें कर रहा है!

वीरेन्द्र—(संकोच से) बाबा, आप झुँझलायें नहीं। कोई किसी का न सदा शत्रु ही रहता है और न मित्र ही। सब समय का खेल है। क्या सभी मनुष्य दुष्ट होते हैं या सभी देवता? कहाँ काली भेड़ नहीं होती और कहाँ हीरामन तोते नहीं? यह आप नहीं कह सकते कि इकबाल को सीधे रास्ते चलते सजा मिली है। मनुष्य यहाँ या वहाँ अपने कर्मों का फल भोगता है। जैसा बोता है, वैसा काटता है। किसी को दोष देना उचित नहीं।

शम्भु०—हाँ बेटा, ठीक कहते हो। अच्छा, कहो, क्या कहना

चाहते हो ? मै अब घर लौट जाना चाहता हूँ। रात को सूझता नही।

वारेन्द्र—(सकोच से) बाबा, मैंने इन दोनों लड़कों के नाम से मकान के साथ ही बीस बीघे अच्छी जमीन रजिष्ट्री कर दी है। यही रसीद है। रजिष्ट्रार के आफिस से अपना कागज ले लेंगे।

शम्भु०—ओह ! तुम तो राजा कर्ण हो गये। जीते रहो, रजनी सदा तुम्हारी प्रशंसा किया करती थी। पक्षपात के कारण मेरी बुद्धि कलुषित हो गई थी। प्रबल शत्रु के प्रति तुम्हारा सद्‌व्यवहार देख मैं चकित हो रहा हूँ। तुम्हारी उदारता ने मुझे मूक बना दिया ।

चौथा अंक

पहला दृश्य

[जेल]

इकबाल—मैं खतम हो गया। उसने बची-खुची मेरी सारी जमीन्दारी नीलाम करा ली। मेरे लड़कों को थोड़ी जमीन भीख दे दी है। वह समझता है, इकबाल के बच्चे मेरी प्रजा हो गये। वाह रे तेरी शान! कल का बनिया, आज का धन्ना सेठ! यदि जेल से निकला तो तुझे बिना हल जुतवाये न छोड़ूँगा। मेरे सैकड़ों बीघे खेत दूसरे-दूसरे लोग जोतते थे। आज मेरे बच्चे जमीन के लिए मुहताज हो गये! धिक्कार है मेरे इस जीवन को!

[हाँफने लगता है और खाँसते-खाँसते बैठ जाता है]

भैरव—गिरिजी, इतने दुःखी न हों। एक तो दमा से सूखकर

काँटा हो गये हैं, अब व्यर्थ चिन्ता से स्वास्थ्य का संहार कर रहे हैं। आपको फिर विश्वास दिलाता हूँ कि जबतक इन सबल भुजाओं की नसों में गुसाईं-वंश का खून बह रहा है, तबतक कोई दुश्मन आप या आपके वंशधरों पर वार न कर सकेगा। क्या मजाल कि वह खेत जोत लेगा। वह कागज लेकर चाटता रहे। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' और 'वीरभोग्या वसुन्धरा' की कहावत अनादि काल से चरितार्थ होती आ रही है।

इकबाल—(सँभलकर) भैरव, मनसूबा तो वही है, पर भाग्य अब वह नहीं रहा। जुर्माने के दो सौ रुपये अभी तक नहीं दिये गये। सारी जायदाद चौपट हो गई। बेचारी स्त्री भी कूच कर गई—जीती रहती तो कुछ उपाय करती। अब तो छः महीने और यहीं सड़ना होगा! जेल के सिपाही तंग करते रहते हैं। मुझसे काम होता नहीं। खाना रूखा-सूखा मिलता है। कफ ने घेर लिया। रात को बुखार हो जाया करता है। बंद कोठरी में जान ऊब गई है। कई दिन से छाती में भयानक पीड़ा हो रही है। कई बार मुँह से खून निकला है। जेलर साहब को शक हो गया है कि मुझे क्षय-रोग हो गया है।

भैरव—हाँ, आपका रंग-रूप भी राजयक्ष्मा के रोगी-जैसा हो गया है। मेरे पिता इसी रोग से मरे थे। बड़ा हत्यारा रोग है।

[डाक्टर का प्रवेश]

डाक्टर—जेलर बाबू, कहाँ वह आदमी है जिसके मुँह से आज खून आया है? उसे 'टी-बी' की शिकायत तो नहीं है?

जेलर—वही है जो बैठकर एक सूरजचंद से बातें कर रहा है।

डाक्टर—(पूर्ण परीक्षा के पश्चात्) इसे तुरत सेग्रिगेशन-(Segregation)-वार्ड में भेजिये जहाँ छुतहे रोगी रहते हैं। इसकी हालत खतरनाक है। इसे 'गैलपिंग थाइसिस' हो गया। आश्चर्य है, कैसे अबतक जीता है। (इकबाल से) तुम्हारा कोई आदमी है जो तुम्हारी कुछ सेवा कर सकता है?

इकबाल—(भैरव की ओर इशारा कर) यही तो है।

दूसरा दृश्य

[भरतपुर]

नरपति—मँगरा, आजकल तेरे छोटे बाबू किस धंधे में फँसे हैं जो प्रपंचपुर से एक महीने पर भी यहाँ नहीं आते?

मँगरा—मालिक, उन्हे दम मारने की फ़ुर्सत नहीं रहती।

नरपति—आज-कल कौन-सा ऐसा काम आ पड़ा है ?

मँगरा—लगभग बीस दिन हुए कि उन्होंने गाँववालों की एक सभा की थी। उसमें यह तय हुआ कि 'प्रपंचपुर' अब 'सहयोगपुर' के नाम से पुकारा जायगा। उस गाँव के सभी आदमी एक दूसरे की सहायता के लिए सदा तैयार रहेंगे। वह गाँव नये ढंग से बसाया जायगा। सहयोगपुर सचमुच अब नये ढंग से बस रहा है।

नरपति—ऐं! वहाँ से बस्ती हटाकर कहाँ ले जा रहा है ?

मँगरा—उस जंगल के पास जहाँ सैकड़ों बीघे मैदान ऊसर पड़े थे। मैदान के बीच से एक लम्बी सड़क तैयार हो गई। एक-एक बीघे के डेढ़ सौ टुकड़े किये गये हैं। ये टुकड़े सौ आदमियों को मिल चुके। दस-दस मनुष्यों के सहयोग से दस घर भी बन रहे हैं। दीवार उठाने, बाँस-काठ लाने तथा छप्पर चढ़ाने में ये दस आदमी एक दूसरे की मदद करेंगे। प्रत्येक घर के चारों ओर उद्यान की भी व्यवस्था की गई है। बस्ती से थोड़ी दूर उत्तर—वन के समीप—एक स्कूल, एक औषधालय, एक बैंक, एक पंचायतगृह, एक पुस्तकालय और एक वाचनालय बनाने का विचार हुआ है। जब सभी मकान तैयार

हो जायँगे तो गाँववाले प्रपंचपुर को छोड़कर सहयोगपुर मे चले जायँगे।

नरपति—यह तो बुरा काम नही है। मैं प्रसन्न हूँ कि वीरेन्द्र लोक-सेवा में लग गया है। उससे जाकर कहना कि मैं एक यज्ञ करना चाहता हूँ। वह जब अस्पताल में था तब मैंने मनोनीत किया था कि श्रीमद्भागवत सुनकर एक सहस्र ब्राह्मणों को भोजन कराऊँगा।

मँगरा—छोटे मालिक को यह बात मालूम है।

नरपति—कभी कुछ कहते थे क्या ?

मँगरा—एक दिन कह रहे थे कि बाबूजी ब्रह्मभोज में जो खर्च करना चाहते हैं उससे यदि इस गाँव में एक तालाब खुदवा देते तो सैकड़ों वर्ष तक इस गाँव के पशु-पक्षी और मनुष्य सुख-सुविधा पाते रहते। भोजन के बिना कोई ब्राह्मण उपवास नहीं कर रहा है।

नरपति—हाँ, ठीक विचार तो है। जाकर कह देना, मै एक हजार रुपये और एक लाख ईंटें दूँगा। तालाब के किनारे एक अच्छा शिवमंदिर भी रहेगा।

तीसरा दृश्य

[जेल का अछूत-वार्ड—Segregation Ward]

इकबाल—बुरे दिन इसे ही कहते हैं। जेलर ने भैरव को मेरी सेवा करने के लिए कहा था। वह इधर झाँकता भी

नहीं। केवल नेग पुराने के लिए बार्ली-दूध दिखाने आता है—वह भी दूर ही से रख देता है, मुझे छूता तक नहीं।

भैरव—(प्रवेश करके) गिरिजी, आज कुछ देर हो गई। रसोई बनाना, पथ्य तैयार करना, सभी कैदियों को परस-कर खिलाना बड़ा विकट काम है। मै तो ऊब गया। रोज जेलर से कहता हूँ कि मुझे दूसरा काम मिले, पर कोई सुनवाई नही।

इकबाल—भैरव, ले जा पथ्य। पी लेना दूध। मैं अब चला। (रोने लगता है)

भैरव—गिरिजी, यह क्या? रोने से दुर्बलता और भी बढ़ जायगी। इतने दिनों तक रोग को छिपाकर आपने स्वयं अपना सर्वनाश कर डाला।

इकबाल—भैरव, तुझपर मुझे बड़ा विश्वास था। पर तुमने भी चलते समय धोखा दिया!

भैरव—राम-राम !! आपके लिए अब भी मैं जान देने पर तैयार हूँ। शक्ति रहती तो कलेजा फाड़कर दिखा देता।

इकबाल—अच्छा, तुमसे एक ही अन्तिम प्रार्थना है। मेरे असहाय बच्चों पर निगाह रखना। (खाँसी उपटने से गिरकर बेहोश हो जाता है)

भैरव—वज्रपात! अब हाथ से इसे कैसे छूऊँ! कहीं मुझे भी

न यह रोग पकड़ ले ! दौड़कर जेलर को खबर दे आता हूँ । (प्रस्थान)

[दो मेहतरों का प्रवेश]

पहला—भाई हमलोगों ने कौन ऐसा पाप किया है कि सभी निकृष्ट कर्म हमारे ही बाँटे पड़े हैं—मैला साफ करना, नाली धोना, सड़क बुहारना, रोगियों का मल-मूत्र फेंकना, लावारिस लाश गाड़ना या फूँकना। अभी डाक्टर और वार्डर हुक्म देकर गये हैं ।

दूसरा—भाई, इन कामों को मैं बुरा नहीं मानता। इनमें सेवा का गंभीर तत्त्व छिपा है । दुःख यही है कि दिल से काम करने पर भी पेट नहीं भरता और समाज हमें नफरत की नजर से देखता है । अगर इस मुर्दे को हमलोग न उठावें तो सारा जेलखाना नरक हो जाय ।

पहला—यही बात बनाकर संतोष कर लो । कैसा अभागा यह आदमी है कि इसकी लाश हम भंगी उठा रहे हैं ।

दूसरा—यही समझो कि हमारा ही बंधु यह था ।

पहला—छी-छी, मुँह से ऐसी बात न निकालो । हम भंगियों की अरथी इस धूमधाम से निकलती है कि देखकर लोग दाँतों अँगुली दबाते हैं ।

[वार्डर का प्रवेश]

वार्डर—अभी तक गप्पें छाँट रहा है । जल्दी उठाओ । ऐसा

हंटर पीठ पर पड़ेगा कि छठी का दूध याद आ जायगा।

[लाश उठाकर भंगी जाते हैं]

चौथा दृश्य

[पादरी का बैठकखाना]

पादरी—तुम कौन हो, सुन्दरी! तुम्हें क्या चाहिये? तुम्हारे चेहरे से पता चलता है कि तुम उच्चकुल में उत्पन्न हुई हो।

प्रभा—मै एक दुखिया हूँ। मेरे पति को दो वर्ष की कड़ी सजा हो गई है। किसी प्रकार अपना और अपने दो छोटे बच्चों का निबाह कर रही थी। अब दोनों दस दिनों से बीमार है। हाथ में न एक पैसा है, न घर में एक दाना। गाँववाले पूछताछ भी नहीं करते। दिन-रात बच्चों के पास रहने से भीख भी नहीं माँगने पाती। आज मेरा पड़ोसी गोविया चमार कहता था कि आपकी कृपा से उसका लड़का अच्छा हो गया है। कृपा करके मेरे बच्चों को भी बचा दीजिये।
(बिलख-बिलख रोने लगती है)

पादरी—बहन, कातर न हो, तू प्रभु ईशू की शरण में चली आई है। मैं तुरत चलता हूँ। तुझे और क्या चाहिये?

प्रभा—मुझे और कुछ नहीं चाहिये। बच्चे अच्छे हो जायँगे तो मै उनको पाल-पोस लूँगी।

पादरी—(मुसकुरा कर) तुमने अभी कहा है कि पथ्यादि के लिए तेरे पास कुछ नहीं है। तेरे कपड़े भी फटे हैं। यदि मै तेरी सहायता कुछ रुपयों से करूँ तो तुझे कोई आपत्ति है?

प्रभा—(संकोच से) मुझे कुछ नहीं चाहिये। केवल दवा का प्रबन्ध कर दीजिये।

पादरी—(आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखता है) अच्छा, चल,, सब ठीक हो जायगा।

(दोनों साथ जाते हे)

प्रभा—यही मेरा झोपड़ा है।

पादरी—(बच्चों की नाड़ी और छाती की परीक्षा कर) बहन, तू अब तक मेरे पास क्यों नहीं आई? मै तो हरिजन-बस्ती में गोपिया के बेटे को देखने यहाँ कई बार आया था। अच्छा, थोड़ा जल गर्म कर तुरत ला।

[प्रभा चली जाती है]

पादरी—ओफ! इन दोनों बच्चों को न्युमोनिया हो गया। ये दोनों किसी प्रकार संध्या तक ठहर सकते है। कैसी भोली-भाली स्वाभिमानिनी युवती है। हिन्दू-समाज की क्रूरता से ही मेरी शरण ली है। एक ही टूट

खाट पर दोनों बच्चे पड़े हैं। दो रोगियों को एक बिछौने और एक ही घर मे रखना निषिद्ध है। कपडे न ओढ़ने के हैं, न बिछाने के। जो हैं, वे भी गन्दे चिथड़े !

प्रभा—(लपककर आती हुई) जल गर्म कर लाई।

पादरी—(बैग से दवा निकालकर बच्चों की छाती में पट्टी बाँधता हुआ) मै अभी अपने बँगले पर जा रहा हूँ। वहाँ से एक घंटे में फिर आऊँगा। घबराना नहीं। वहाँ से एक आदमी भेज रहा हूँ जो यहीं रहेगा और समय-समय पर मुझे खबर देता रहेगा। (प्रस्थान)

प्रभा—कैसे सज्जन पुरुष पादरी साहब हैं। इनके स्वभाव, व्यवहार और परोपकार की प्रवृत्ति को देख मै आश्चर्य में पड़ गई हूँ। ऐसा बर्त्ताव तो स्वजन से भी संभव नहीं। यहाँ भला ऐसा कौन है ?

[दो सुन्दर स्ट्रेचर, दो स्वच्छ दरी, दो चादर, दो ओढ़नी और दो तौलिया के साथ एक नौकर का प्रवेश]

नौकर—देवी, यहाँ कुछ देर पहले जो पादरी साहब आये थे, उन्होंने कहा है कि दोनों बच्चों को अलग-अलग सुला दें। कहिये, किस तरफ बिछा दूँ ? साहब भी आ ही चले।

पाँचवाँ दृश्य

[सहयोगपुर]

मृत्युंजय—आपको ठीक खबर मिली है कि हरपुर का पादरी भैरव की स्त्री को क्रिस्तान बनने के लिए विवश कर रहा है? वह तो बड़ी साध्वी थी। नागरिका कहती थी कि रजनी की मृत्यु के समय उसके लड़कों के गहने चुराकर भैरव अपने घर ले गया था; पर उन्हें प्रभा ने लौटा दिये थे। ऐसी भली स्त्री विधर्मियों के पंजे में फँसेगी? यह विश्वास करने योग्य नहीं।

उपदेशक—क्या मैं आपसे दिल्लगी कर रहा हूँ? उसके दो छोटे बच्चे बीमार थे। गाँववालों ने बात भी न पूछी। वह दौड़ी पादरी के पास गई। पादरी ने पूरी सहायता की—बड़ी सहानुभूति दिखाई। गाँववालों को प्रभा के आचरण पर संदेह हो गया! वे अब उसका घड़ा अपने घड़े के साथ कुएँ पर चढ़ने नहीं देते। पादरी को भी फोड़ने का मौका मिल गया।

मृत्युंजय—हिन्दू-समाज इसी प्रकार नष्ट हो जायगा। जिस समाज के मनुष्यों में एकता नहीं, प्रेम-भाव नहीं, विपत्ति में परस्पर-सहायता की प्रवृत्ति नहीं, वह समाज कदापि उन्नति नहीं कर सकता।

उपदेशक—महाशयजी, अभी तक कुछ बिगड़ा नहीं है। मैंने प्रभा से कल भेंट की थी। उसे बहुत समझाया है। कहती है, अब तो समाज में हँसी उठ गई, मेरा पति भी अब ग्रहण नहीं कर सकता। फिर भी, यदि उसके रहने और खाने-पीने की ठीक व्यवस्था कर दी जाय, तो वह ईसाई न होकर हिन्दू ही बनी रहेगी।

मृत्युंजय—उपदेशकजी, बात करने का समय नहीं है। मेरे पाँव में दर्द है, चलने से लाचार हूँ। ज्योत्स्ना के साथ आप तुरत उसके पास जाकर उसे यहाँ ले आवें। हमलोगों ने इस गाँव में एक अनाथालय भी खोल रखा है।

उपदेशक—अरे भोजन और निवास-स्थान का प्रबंध ही तो सब कुछ नहीं है? वह अभी तरुणी है। अगर जेल से लौटने पर भैरव उसे अपने साथ न रखे, तो वह बेचारी कहाँ जायगी?

मृत्युंजय—उसे पहले ले तो आइये। समय पर सब कुछ ठीक हो जायगा।

[उपदेशक और ज्योत्स्ना का प्रस्थान। वीरेन्द्र का प्रवेश]

वीरेन्द्र—नमस्ते महाशयजी, कुशल तो है?

मृत्युंजय—इस परिवर्त्तनशील जगत् में, जिसका दूसरा नाम मर्त्यलोक है, कुशल कहाँ? जिस दुनिया में भिन्न-

भिन्न प्रवृत्ति और रुचि के प्राणी निवास करते हैं, जिस संसार में एक जाति दूसरी को दबाने के यत्न में लगी रहती है, भला उस जगत् का कोई व्यक्ति शान्ति से कैसे रह सकता है?

वीरेन्द्र—संसार या समाज में इस तरह के बहुरंगी मनुष्य तो रहेंगे ही। कष्टों, चिन्ताओं और उपद्रवों से पीड़ित मनुष्य को सच्ची शान्ति पहुँचाने ही में अलौकिक आनन्द है। जो हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहते हैं, दूसरों के सताने ही में जीवन बिताते हैं, उन्हीं से कुशल असहयोग करता है। आपने तो अपना जीवन दूसरों के कल्याण में लगा दिया है। आप-जैसों के लिए भगवान् की मंगलमयी ज्योति अपना आँचल पसारे खड़ी रहती है।

मृत्युंजय—अच्छा, कहिये, किधर चले?

वीरेन्द्र—नई बस्ती तैयार हो गई। स्कूल, छात्रावास, अस्पताल, अनाथालय, सब बन गये। दूर-दूर से असहाय, और अनाथ बालक आकर पढ़ने लगे हैं। मैं स्वयं दो घंटे पढ़ा आता हूँ। आसपास के रोगियों को दवा भी बँटने लगी। लड़कियों को सिलाई और गृह-व्यवस्था सिखानेवाली एक अध्यापिका की आवश्यकता है। आपसे इसीके विषय में सलाह लेने आया हूँ।

मृत्युंजय—वीरेन्द्र बाबू, आप मुझसे परामर्श लेने नहीं आते मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाने आते हैं। मै आपका कार्य-कलाप देख आश्चर्य चकित हो रहा हूँ। आपने जो कार्य इस ग्राम के उद्धार के लिए प्रारंभ किया है, वह चिरकाल तक स्मरणीय रहेगा और दूसरे गाँववालों के लिए आदर्श का काम करेगा। मै तो अब थोड़े दिनों का मेहमान हूँ। परन्तु मेरी एकमात्र पुत्री 'ज्योत्स्ना' सूचिकर्म, चिकित्सा, सेवा-शुश्रूषा आदि समाजोपयोगी कर्मों में बड़ी दिलचस्पी रखती है। बालिकाओं को वह प्रसन्नतापूर्वक पढ़ा सकेगी। यदि आपको आपत्ति न हो तो मै सहर्ष उसे आपके सुपुर्द कर दूँगा।

वीरेन्द्र—तब तो सहयोगपुर की संस्थाओं का भाग्य उदित हो जायगा। ज्योत्स्ना सदृश कर्त्तव्यपरायणा विदुषी महिला यदि अध्यापिका और संचालिका के रूप में प्राप्त होगी, तो सभी संस्थाएँ दिन-दूनी-रात-चौगुनी उन्नति करेंगी। हमलोगों का अभीष्ट सिद्ध हो जायगा।

छठा दृश्य

[रतनपुर-जेल]

भैरव—कल इस काल-कोठरी से मेरी मुक्ति होगी। बच्चों से मिलूँगा। वे कुछ और बड़े हुए होंगे। प्रभा का

मलिन वदन मुझे देख खिल उठेगा। अब फिर ज्यादती कभी न करूँगा। कान ऐंठता हूँ।

कैदी-दारोगा—भैरव बाबा, कान ने क्या अपराध किया है कि ऐंठ रहे हो? अब तो आपका भी दिन नियरा रहा है। 'अब तो दिन नियराना, सोहागिन चेत करो।'

भैरव—दारोगाजी, कल यहाँ से बिदा होना है। अभी यही प्रण कर रहा था कि कभी दूसरे के बहकावे में पड़कर बुरा काम न करूँगा।

दारोगा—यहाँ से निकलने पर यह बात स्मरण रहेगी? मुझे तो विश्वास नहीं।

भैरव—दूध की जली बिल्ली मट्ठा फूँककर पीती है। यदि सिर पर शैतान ही सवार होगा, तो मैं क्या करूँगा। ऐसे तो 'विधि का लिखा को मेटनहारा'? अच्छा, आप कब चलते हैं?

दारोगा—आज ही शाम को मेरी रिहाई होगी।

भैरव—गजेन्द्र-मोक्ष कल होगा!

दारोगा—बाबा, मै तो लज्जा और चिन्ता से मरा जा रहा हूँ। इकबाल बड़ा भाग्यवान था कि चल बसा। दुनिया में मेरी बड़ी हँसी हुई। सभी नफरत की नजर से देखेंगे। मेरे बच्चे खुद क्या सोचेंगे कि बदचलन होने

से इन्हें सजा मिली थी। बच्चों के भरण-पोषण की चिन्ता अलग सता रही है।

भैरव—आप तो लिखे-पढ़े आदमी हैं। आपकी जाति के मनुष्य अधिकतर उदार होते हैं। वे कहीं-न-कहीं रोजी लगा ही देंगे। एक कायस्थ का चले तो सैकड़ों कायस्थों का गुजारा हो जाता है। जिस ईश्वर ने दाँत दिये हैं, वह जरूर चारा देगा।

दारोगा—उसीका तो भरोसा है।

(वार्डर का प्रवेश)

वार्डर—(कैदी-दारोगा से) तुमको जेलर साहब बुला रहे हैं।

सातवाँ दृश्य

[सहयोगपुर का अनाथालय]

प्रभा—बहन, जैसा सुख मुझे इस आश्रम के बच्चों की सेवा-शुश्रूषा में मिल रहा है, जैसी शांति इस आश्रम के संचालन में पा रही हूँ, वैसी कहीं नसीब न हुई थी। जबतक आश्रम के बच्चे उठते नहीं, तबतक मैं आश्रम को साफ कर देती हूँ। बच्चों के लिए जलपान आठ बजे तक तैयार कर देती हूँ। बारह बजे तक सभी को खिला-पिलाकर, एक बजे से तीन बजे तक, बालिकाओं को सीना-पिरोना सिखाती हूँ। रात में

सात बजे तक बालिकाओं को भी खिला-पिलाकर निश्चिन्त हो जाती हूँ। रात में पुनः आठ से नव तक तुमसे चिकित्सा सीखती हूँ। कुछ दिन और पहले तुमसे भेंट हुई रहती, तो मेरे लाल कभी न लुटते।

ज्योत्स्ना—बहन, चिन्ता छोड़ दो। दुनिया में अपनापन का खयाल उठते ही यह एकदम छोटी और भयावनी मालूम पड़ती है। संसार में जो प्रेम हम अपने बच्चों के प्रति प्रकट करते हैं, उसे यदि संसार के अन्य बच्चों के प्रति प्रदर्शित करें, तो वे हमारे ही बच्चे हो जाते हैं और हम उस विशाल परिवार की धात्री। दाम्पत्य प्रेम की भी संसार में आवश्यकता है। परन्तु अधिक आवश्यकता उस प्रेम की है जिसके द्वारा हम स्त्रियाँ जगत् के वृद्ध पुरुषों की सेवा पिता के रूप में, समवयस्क तरुणों की सेवा भाई के रूप में, छोटे बच्चों की पुत्र के रूप में, वृद्ध स्त्रियों की माता के रूप में और अन्य स्त्रियों की बहन के रूप में कर सकें।

प्रभा—बहन ज्योत्स्ना, मुझे अब कुछ भी चिन्ता नहीं है। मैं परमात्मा की मंगलमयी ज्योति सब प्राणियों में प्रतिफलित पाती हूँ। वास्तव में प्राणियों की सेवा ही परमात्मा की सेवा है। उस सेवा के लिए मेरे

हृदय में उमंग का स्रोता फूट पड़ा है। यही मेरा हृदय, जिसमें केवल अपने पति और बच्चों को छोड़ दूसरे के लिए कोई स्थान न था, आज इतना विस्तृत मालूम हो रहा है कि इसमें आज पशु-पक्षी, कीट-पतंग, शत्रु-मित्र, सबके लिए काफी स्थान है। यदि वे मुझे न भी अपनावें, तो भी उन्हें मैं दया और स्नेह की दृष्टि से ही देखूँगी—उनके कल्याण के लिए विशुद्ध अन्तःकरण से प्रयत्न करती रहूँगी।

आठवाँ दृश्य

[ग्रामीण पंचायत मे गाँव के सभी प्रमुख स्त्री-पुरुष]

वीरेन्द्र—भाइयो और बहनो! आज हमलोग इस नई बस्ती की बरस-गाँठ मनाने के लिए इकट्ठे हुए हैं। किसी भी काम के संचालन के लिए एक योग्य नायक की जरुरत होती है। हमलोगों में, ज्ञान और बुद्धि में, श्रेष्ठ श्रीमृत्युंजय महाशय हैं। मेरा प्रस्ताव है कि वही इस ग्राम-सभा के नेता बनाये जायँ।

रघुराम कुरमी—मैं सहयोगी वीरेन्द्र बाबू के प्रस्ताव का अनुमोदन करता हूँ।

जग्गू चमार—मै कुरमीजी की बात का समर्थन करता हूँ।

मृत्युंजय—भाइयो और बहनो ! मैं आपलोगों को धन्यवाद देता हूँ कि आपलोगों ने अपनी पंचायत का अगुआ चुनकर मुझे सम्मानित किया है। मैं मंत्री वीरेन्द्र बाबू से अनुरोध करता हूँ कि वे इस ग्राम-पंचायत की रिपोर्ट सुनावें।

(भैरव प्रवेश करके चुपचाप एक जगह बैठ जाता है)

वीरेन्द्र—मान्य सभापति महोदय तथा सज्जनो ! यह पंचायत आज दो वर्षों की सेवा के बाद तीसरे वर्ष में प्रवेश करती है। सारे गाँव का शासन इसी के अधीन है। इसके सात विभाग हैं—कृषि, शिक्षा, चिकित्सा, सफाई, सिंचाई, न्याय और बैंक। प्रत्येक विभाग के संचालन के लिए छः सदस्य हैं। इस गाँव से हर साल कुछ आदमी बाहर वृत्ति की खोज में जाते थे। परन्तु जब से हमलोग संगठित होकर काम कर रहे हैं, तब से किसी को बाहर जाने की जरूरत नहीं पड़ती। इस गाँव में उपज और उद्योग-धंधे की इतनी अधिकता हो गई है कि हमलोग दूसरे गाँववालों की रोटी का भी सवाल कुछ अंशों में हल कर रहे हैं। एक बड़ा तालाब तैयार हो गया है। इसके चारों ओर चार नल खेत सींचने के लिए लगे हुए हैं। वर्षा के अभाव में भी हमारी खेती

खराब नहीं हो सकती। एक सज्जन की उदारता से स्नान के लिए पक्का घाट भी बन गया है। आपलोगों को यह सुनकर हर्ष होगा कि इस गाँव में दो साल के अंदर एक भी मुकदमा न हुआ। ग्राम की रक्षा के लिए बीस सबल ग्रामीणों का एक महावीर-दल है। अनाथाश्रम, चिकित्सालय और सफाई के विभाग ज्योत्स्ना देवी और प्रभा देवी के हाथ में हैं। अनाथाश्रम में २४ लड़के और १६ लड़कियाँ हैं। इस ग्राम के सभी निवासी एक परिवार के सदृश हैं, तथापि हमें दूसरे गाँववालों को भी अपने परिवार में सम्मिलित करने का प्रयत्न करना पड़ेगा। विश्वास है कि जिस परिवार में मृत्युंजय बाबू, ज्योत्स्ना देवी, प्रभा देवी, रघुरामजी, जग्गूदासजी और आपलोगों के सदृश कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति हैं, वह परिवार विघ्नों के पहाड़ को भी चूर्ण कर भूतल में सुखशान्ति की भागीरथी बहा सकता है।

मृत्युंजय—सज्जनो, आपने मंत्री की रिपोर्ट सुन ली; प्रपंचपुर को सहयोगपुर के रूप में देखा, दुःख को सुख के रूप में, अशांति को शांति के रूप में, दरिद्रता को ऐश्वर्य के रूप में, अकर्मण्यता को कर्त्तव्यपरायणता के रूप में, लोक-विरोध को लोक-संग्रह के रूप में।

किसके सहारे? उसी एक ज्योति के सहारे जो अच्छे या बुरे, उपकारी या अपकारी, सज्जन या दुर्जन, राजा या रंक, सबमें समान रूप से वर्त्तमान है। उस ज्योति का तेज या मंद होना हमारे कर्मों पर निर्भर है। यही कर्म हमारे सुख या दुःख का विधायक है। आज उसी ज्योति को हमारे हृदय-मंदिर में वीरेंद्र बाबू ने जगाया, जिसके आलोक से हमें अपना कर्त्तव्य-मार्ग स्पष्ट देख पड़ा। आप जो सुख-शांति का उपभोग कर रहे हैं, संघ-शक्ति का मधुर फल चख रहे हैं, सबका श्रेय वीरेंद्र बाबू को है। इन्हीं की कर्त्तव्य-पर्वतमाला से संगठन और एकता की मंदाकिनी निकलकर—ऐश्वर्य और सुख-शांति तथा शिक्षा और शिष्टाचार की विभिन्न धाराओं में विभक्त होकर—उस विश्व-व्यापी विराट अमृत-सागर से मिलने के लिए तीव्र गति से बहती चली जा रही है। आज मै अपने जीवन के संध्याकाल में इस पवित्र संस्था को सदा के लिए अपनी 'ज्योत्स्ना' को अर्पित करता हूँ, जो भिक्षुणी संघमित्रा की भाँति लोक-कल्याण में अपने जीवन को अर्पित करने का वचन मुझे दे चुकी है।

भैरव—(उत्साहपूर्वक खड़ा होकर) भाइयो, मैं महावीर-दल में

भरती होकर ग्राम की रक्षा के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करता हूँ। कृपया मुझे अपनाइये।

सबलोग—(उठकर एक स्वर से) स्वागत! स्वागत! भैरव गिरिजी, आइये। हम सब लोग कर्त्तव्य की वेदी पर अपना जीवन बलिदान करें। वन्देमातरम् !!!